भूमिका

भीत पर भी जो कोई उपदेश लिखा हो तो मनुष्य को चाहिए कि उसको अपने कान में धर ले अर्थात् पढ़ ले या सुन ले।

(शेख़सादी)

मैंने सन् १८८७ में रायबहादुर सरदार हरदयालसिंह सेक्रेटरी मुसाहिब आला राज्य जोधपुर के नाम से उर्दू में १ नसीहतनामा बनाया था। जिसको उन्होंने दो बार छपवाकर कई सौ प्रतियां तो पंजाब गवर्नमेंट की सेवा में भेजी थीं जो बहुत पसंद होकर पाठ-शालाओं में बांट दी गईं और सर्वसाधारण में भी उसकी बहुत कदर हुई। इसलिए वह कई बार छपा और बराड के विद्या-विभाग में भी कई बरस तक विद्यार्थियों को इनाम में देने के लिए लिया जाता रहा।

अब उसी का यह हिंदी अनुवाद भी हिंदी-भाषा-भाषी सज्जनों, श्रीमानों, विद्यार्थियों, तथा सर्वसाधारण के हित के निमित्त किया गया है। आशा है कि इससे सब लोगों को लाभ होगा। क्योंकि उपदेश ऐसी वस्तु नहीं है कि जिससे किसी की हानि हो। इसीलिए

सब देशो के बड़े बड़े महात्माओं और ग्रंथकारों ने अपने अपने अनुभव से सब लोगों के लिए अच्छी अच्छी नसीहतें (सदुपदेश) लिखी हैं, उन्हीं ग्रंथों में से छाँट छाँट कर यह ग्रंथ सङ्कलन किया गया है। मैं अधम-बुद्धि इस योग्य नहीं हूँ कि किसी को कुछ उपदेश करूँ, किन्तु स्वयं ही बड़े लोगों के उपदेश का मोहताज हूँ। हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और अरबी ग्रंथों में जो उपदेश पढ़े थे उनमें के थोड़े ये हैं।

सज्जन पुरुष मेरी धृष्टता को क्षमा करें और जहाँ कुछ भूल चूक देखें सुधार दें। विद्वान् सुलेखकों से मेरी यह भी प्रार्थना है कि इस समय सर्वसाधारण और विशेष करके नव-शिक्षितों को तथा विद्यार्थियों को सदाचार, परोपकार और राजभक्ति के उपदेशो की बहुत आवश्यकता है, अतएव दूसरे विषयो के साथ साथ इस विषय के भी ग्रंथो के रचना की ओर ध्यान दिया जाय तो अपने देश का बड़ा ही सुधार हो। किसी ने किसी महात्मा से पूछा कि ऐसा कोई काम बताओ कि जिसमें सब का लाभ हो और संसार के नाना मतावलम्बियों में से कोई भी उसमें कुछ शंका और आपत्ति न कर सके।

महात्मा ने कहा कि ऐसे तो ये तीन काम हैं—

१—सब लोगों के आने जाने के रास्तो में वृक्ष लगाना।

२—प्यासे मुसाफ़िरों और पशु-पक्षियों के लिए जगह जगह पानी की पियाऊ बैठाना।

३—सब लोगों को सदुपदेश देना।

मैंने उस महात्मा के पिछले वाक्य के आधार पर यह ग्रंथ अपनी अल्प-बुद्धि के अनुसार रचा है। इसके ४ अध्याय हैं।

१—पहला अध्याय, राजाओं के वास्ते ७९ उपदेश।

२—दूसरा अध्याय, राज्य के कर्मचारियों के लिए ३५ उपदेश।

३—तीसरा अध्याय, सर्वसाधारण के निमित्त १०७ उपदेश।

४—चौथा अध्याय, उपदेश दृष्टान्तों के साथ ४०।

देवीप्रसाद

जोधपुर फाल्गुन सुदी १ संवत् १९६९

सूची



सदुपदेश-संग्रह

पहला अध्याय

राजाओं के वास्ते उपदेश ।

(१) राजा को चाहिए कि जिस नौकर को बढ़ावे, यदि उससे कुछ अपराध हो जावे, या कोई शत्रु उसकी बुराई करे तो उस पर एकदम उसको न बिगाड़ दे। क्योंकि यह एक बँधी हुई बात है कि राजा जिसका सम्मान करता है, सब लोग उससे ईर्ष्या करने लगते हैं और उसके गिराने के लिए राज-भक्ति की ओट लेकर राजा से ऐसी ऐसी बातें लाग-लपेट की करते हैं जिनका आशय, जो उनको हानि पहुँचाने का होता है बहुत दूर जाकर निकलता है। परन्तु राजा की सावधानी इसमें है कि उनकी बातों को पहले ही से जाँचता रहे और जब उनके गूढ़ार्थ का मर्म जान ले तो उनको ऐसा मुँहतोड़ जवाब दे दे कि फिर उन्हें वैसे षड्यंत्र रचने का साहस न हो।

(३) राजा को चाहिए कि धर्म, कर्म और भरोसे के पक्के और पूरे नौकरों को अपने पास रक्खे, कच्चे और अधर्मी आदमियों से जहाँ तक बचा जाय बचे। क्योंकि जब राजा के कर्मचारी धर्मात्मा होंगे तो प्रजा सुख-चैन से रहेगी, नहीं तो बिना अपराध मारी जायगी, और ईश्वर के दरबार में राजा का मुँह काला होगा।

(४) राजा को गुणवानों की पालना और प्रतिष्ठा उनकी योग्यता के अनुसार करनी चाहिए। क्योंकि उनसे कुछ अच्छी ही सेवा बन आवेगी और जो गुणहीन हो उसको कभी अपने पास नहीं आने देना चाहिए। क्योंकि काँटे के झाड़ से चुभने के सिवा और क्या लाभ होगा।

(५) राजा को नीचे लिखे आदमियों का कभी विश्वास न करना चाहिए क्योंकि उनका मन कभी साफ़ न होगा—

१—जिसको बिना अपराध दंड मिला हो।

२—जो अपना मान-सम्मान राज्यसेवा में खोकर निर्धन और अपमानित हो गया हो।

३—जो अपने काम से अकारण दूर कर दिया गया हो और आगे को भी कोई आशा न रही हो।

४—जो स्वभाव से ही उद्दण्ड और कुकर्मी हो।

५—जो जन्म का आलसी और निकम्मा हो।

६—वह अपराधी कि उसको तो दंड मिला हो पर उसके साथी दण्ड मिलने से बच गये हों।

७—वह अपराधी, जिसे किसी अपराध में मान और माल की हानि भी पहुँची हो और उसके साथी केवल वाग्दंड पर ही छूट गये हों।

८—जिसने अच्छा काम करके भी कुछ फल न पाया हो और दूसरों ने उसके देखते हुए थोड़ी ही सेवा का बहुत लाभ उठा लिया हो।

९—जिसको उसके शत्रुओं ने राजा की नज़रों से गिरा कर बेइज्ज़त कर दिया हो, उसका काम आप ले बैठे हों और राजा उनसे राज़ी और इससे नाराज़ हो।

१०—वह आदमी जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को हटा कर हर एक बात में राजा को दबाता हो।

११—जिसने राजा के पास अपने शत्रुओं से कम आदर-सत्कार पाया हो।

(६) राजा, नौकरों को अपनी कृपाओं से न तो इतना निराश करदे कि वे शत्रुओं से जा मिलें और न ऐसा निहाल कर दे कि बराबरी का दावा करने लगें किन्तु सदा-सर्वदा आशा और त्रास के फंदों में फँसा हुआ रक्खे, जिससे वे अपनी चादर के बाहर पाँव न पसार सकें।

(७) राजाओं को ३ बातें ज़रूर करनी चाहिए।

१—एक यह कि सत्य के पक्षपाती रहें जिनसे उनकी भलाई का यश चारों ओर फैले।

२—धर्म का पालन करें, अधर्म को मिटावें। चोरों और दुष्टों को दंड दें जिससे परमात्मा और सब लोग उनसे राज़ी रहें।

३—धूर्तों और कपटियों से बचें और शत्रुओं से गाफ़िल न रहें।

(८) राजा को प्रजा-पालन पर सदा दृष्टि रखनी चाहिए और उसकी भलाई को मुख्य समझना चाहिए। जो राजा अपने सुख और आराम के लिए प्रजा को कष्ट देता है उसके राज्य और तेज में शीघ्र ही भंग पड़ जाता है। क्योंकि राजा का राज्य प्रजा के सुखी होने से ही निर्विघ्न रह सकता है।

(९) राजा को अपना भेद उसी आदमी से कहना चाहिए कि जिसका भरोसा अनेक बार की जांच और परीक्षा से हो गया हो, तो भी उसको बहुत सी ताकीद कर देनी चाहिए कि वह उस भेद को अपने मन ही में छिपाये रक्खे और किसी से न कहे।

(१०) राजा को अपने मन की बात हर एक आदमी से कभी नहीं कहनी चाहिए और विशेष करके ऐसे मित्र से कि जो निराश हो गया हो, और ऐसे शत्रु से कि जो दिल में डरता हो।

(११) ये तीन गुण राजा में अवश्य होने चाहिएं, क्योंकि इनके बिना कभी किसी राजा का राज्य स्थिर नहीं रह सकता।

१—बुद्धि का फैलाव, जिससे होने वाली बात को पहले से ही सोच ले।

२—जिस काम का उद्योग करे पहले उसको सब तरह से जांच ले। जब किसी प्रकार का विघ्न न देखे तो उसको करे।

३—वीरता—जब शत्रु सामने आवे तो कभी उससे मुँह न मोड़े ।

(१२) राजाओं को क्षमा और गंभीरता का साधन विशेष करके रखना चाहिए। अपने पास रहने वालों का यदि कोई अपराध भी देखलें तो एक दो बार आनाकानी कर जावें और उनकी प्रतिष्ठा में कुछ भंग न डालें। क्योंकि जो राजा ज़रा ज़रा भूल और नकसीर का दंड देते हैं तो उनकी ओर से उन्हें शंका उत्पन्न हो जाती है। जिससे एक तो राज्य के काम बिगड़ने लगते हैं और दूसरे लोगों को राजा की क्षमा का कुछ भरोसा नहीं रहता ।

(१३) राजा को चाहिए कि उस आदमी की बात और सलाह को कभी भली न जाने जो पहले किसी दोष से दूषित किया गया हो, परन्तु जो वह ऐसा आदमी हो कि राज्य का काम बिना उसके प्रबंध और प्रयत्न के न चल सकता हो और न उसके समान और कोई आदमी काम करनेवाला हो तो उसका भरोसा इतना बहुत करे कि थोड़े दिन में वह दोष से निवृत्त हो जावे क्योंकि काम के आदमी बहुत कम मिलते हैं ।

(१४) राजा को चाहिए कि ख़ुशामदियों और चुग़लख़ोरों को अपने पास न आने दे वरन् जिसमें यह अवगुण देखे उसको निकाल बाहर करे ताकि कोई उपद्रव न उठने पावे ।

(१५) राजा को अपने अमीरों और वज़ीरों से मेल-मिलाप और अच्छा बरताव रखना चाहिए क्योंकि उनके मेल और एक-मन हुए बिना राज का बड़ा काम पार नहीं पड़ सकता ।

(१६) शत्रु की ख़ुशामद और अधीनता पर कभी विश्वास करके ग़ाफ़िल न हो जाना चाहिए क्योंकि शत्रु कभी मित्र न होगा ।

(१७) राजा का यह भी कर्तव्य है कि जब उसके मनोरथ सिद्ध हो जावें तो उन की पूरी पूरी सँभाल रक्खे और उन्माद से उनको नष्ट न करदे क्योंकि फिर सिवा पछताने के कुछ न होगा। "हाथ भी जले और होले भी हाथ से गये" की कहावत सच्ची हो जायगी।

(१८) जहाँ तक हो सके राजा द्वेषी लोगों की संगत से बचता रहे और उन की मीठी मीठी बातों से धोखा न खाजाय। क्योंकि जिस के मन में द्वेष होगा उससे हानि पहुँचाने के सिवा और कुछ न बन आवेगा।

(१९) राजा को यह भी न चाहिए कि नाहक किसी के पीछे पड़ जावे, वरन सब के साथ भलाई करे; क्योंकि भलाई का बदला भलाई है और बुराई का बदला बुराई।

(२०) राजा को सहनशील भी होना चाहिए, क्योंकि इससे उसके उद्योग सफल हो जाते हैं।

(२१) राजा को अपने काम ऐसे लोगों को सौंपने चाहिए जो भलेमानस, जितेंद्रिय और धर्म-परायण हो और फिर जो आदमी जिस काम के योग्य हो उसको वही काम देना चाहिए। यदि किसी में बहुत गुण होने पर कोई अवगुण भी हो तो उसके कारण यह ज़रूर नहीं है कि उसे बिलकुल ही दूर रक्खा जावे, परन्तु उसके अवगुण से भी गाफ़िल नहीं रहे और किसी से जाने या अनजाने एक बार कुछ बिगाड़ भी हो जावे तो उससे दरगुज़र कर जाना अच्छा है, परन्तु जानबूझ कर बार बार अपराध करने वाले को अपनी सरकार से निकाल देना चाहिए।

(२२) राजा को न तो स्वयं ज़ियादा किफ़ायत करना चाहिए और न बहुत किफ़ायत करने वाले नौकरों से राजी रहना चाहिए। क्योंकि नौकरों का अति किफ़ायती होना भी स्वामि-भक्ति नहीं है, वरन स्वामि-विद्रोह है। किफ़ायत वह है कि फ़िज़ूल-ख़रची न होना चाहिए। यह नहीं कि हक़दारों को उनके वाजबी हक इनाम और बख्शीश से विमुख रक्खा जावे।

(२३) राजा का यह कर्तव्य है कि जो काम अपने दीवानों और कामदारों को सौंपे उसकी जाँच और परताल भी आपही करता रहे, जिससे देश की व्यवस्था उससे छिपी न रहे; वरन ऐसी सावधानी और सँभाल में बहुत से लाभ हैं जिनमें से एक यह है कि ऐसा करने से उसको हर एक ओहदेदार और अहलकार के चलन की ख़बर रहेगी, दूसरे सब राज्य के नौकर-चाकरों को पूछ-ताछ होने का डर रहेगा।

(२४) राजा को अपने सूबेदारों और मुसाहिबों के चाल-चलन से अच्छी तरह ख़बरदार रहना चाहिए। जो हाकिम प्रजा को पीड़ा देता हो या सरकारी माल में से चोरी करता हो, उसका नाम अपने दफ़्तर से काट देना चाहिए और जिस का ढंग और प्रजा के साथ बरताव अच्छा हो उसकी तनख्वाह और इज़्ज़त बढ़ा कर नीचे से ऊपर लेना चाहिए। क्योंकि जब उसके ऐसा करने से लोगों को मालूम होगा कि राजा अच्छा काम करने वालों की क़दर करता है और बुरे काम करने वालों को दंड देता है तो जो लोग भलेमानस हैं, वे और भी अच्छा काम करने को दौड़ेंगे जिसके कारण और ऊँचे पद को पहुँचें और जो अयोग्य और बद-

चलन हैं वे डर जायँगे और आगे को अन्याय तथा प्रजा को सताने का साहस न कर सकेंगे ।

(२५) नौशेरवाँ बादशाह के वज़ीर बुजर्चमिहिर ने कहा है कि जो राजा अपने राज्य को स्थिर करना चाहे वह इन ११ सिद्धान्तों का पालन करे ।

१—अकारण क्रोध और कोप करने से बचे ।
२—सचाई और सफ़ाई का बरताव रक्खे ।
३—सब काम बुद्धिमानों की सलाह से करे ।
४—बड़े लोगों का आदर करे ।
५—कैदियों का हाल जानता रहे ।
६—रास्तों की देख भाल रक्खे ।
७—अपराध के अनुसार दंड दे ।
८—सेना और शस्त्रों की सजावट से गाफ़िल न रहे ।
९—अपने सगे सम्बन्धियों की सार-संभाल करता रहे ।
१०—चारों ओर चार (ख़बर लाने वाले दूत) भेजा करे ।
११—काम करने वालों की कदर और इज्जत बढ़ावे ।

(२६) उसी ने यह भी कहा है कि राजाओं को चार बातों से बचा रहना चाहिए ।

१—क्रोध को अपने ऊपर प्रबल होने देने से—क्योंकि क्रोध करना लाचार लोगों का काम है और राजा लाचार नहीं है ।
२—झूठ बोलने से—क्योंकि झूठ बोलना किसी डर या लोभ से होता है राजा इन दोनों दोषों से रहित है ।
३—कंजूस होने से—क्योंकि कंजूस होना दरिद्री हो जाने के डर से होता है । राजा दरिद्री नहीं है ।

४—सौगंद खाने से-सौगंद दोष दूर करने के वास्ते खाई जाती है और राजा निर्दोष होता है।

(२७) राजाओं को जहाँ तक हो सके अन्याय और अत्याचार से बचना चाहिए। जिससे परलोक में बचाव रहे और सदा दया और क्षमा का ध्यान रक्खें ताकि परमेश्वर भी उन पर दया और क्षमा करता रहे।

(२८) राजाओं को इन आठ आदमियों से अपने को बचाये रखना चाहिए।

१—जो पालने के उपकार को भूल जावे और नमक-हरामी करने से न डरे।

२—जो बिना कारण क्रोध किया करे और क्रोध भी ऐसा कि जिसे वह दबा न सके।

३—जो ईश्वर और मृत्यु को भूल कर संसार के मद में घमंड में आ जावे।

४—जो छल-कपट से अपना काम निकालता हो, और उस को अच्छा जानता हो।

५—जिसे झूठ बोलने और बेइज्ज़त होने की आदत हो और सचाई और ईमानदारी से कोसों दूर हो।

६—जो आशा-तृष्णा के वशीभूत हो।

७—जो निर्लज्ज और बेअदब हो।

८—जो बिना बात ही लोगों को बुरा समझे और उनको पीड़ित करे ।

(२९) राजा का बहुत ज़रूरी काम यह है कि अपने नौकर-चाकरों के स्वभाव और बरताव को देखे और उनकी बुद्धि और समझ बूझ की जाँच करता रहे । इन लोगों की बुद्धि दो प्रकार की होती है ।

एक धीमी, परन्तु भली और भलाई की ओर जाने वाली । दूसरी तेज और तीक्ष्ण, परन्तु बुराई की तरफ़ झुकी हुई ।

पहली बुद्धि के लोगों की पुष्टि करनी चाहिए क्योंकि उनसे कभी किसी का अपकार न होगा ।

दूसरी बुद्धि वालों से हर वक्त, सावधान और सचेत रहना चाहिए कि कहीं कोई कुछ उपद्रव न कर बैठे ।

(३०) राजों को नौकरों के पालन और पोषण में वैद्यों के समान काम करना चाहिए । वैद्य जब तक किसी की प्रकृति नहीं जान लेता, तब तक औषधि नहीं देता । वैसे ही राजा भी अपने नौकरों की प्रकृति जान कर उसके अनुसार उनका पालन-पोषण करे और काम निकाले, जिस में फिर उस को पछताना और हानि न उठाना पड़े ।

(३१) राजा इन आठ आदमियों को अवश्य अपने पास रक्खे ।

१—जो कृतघ्न न हो।

२—जो प्रीति का पक्का हो।

३—जो विद्वानों की कदर जानता हो।

४—जो कुकर्म और घमंड से दूर रहता हो।

५—जो कोप और क्रोध को दबाने की सामर्थ्य रखता हो।

६—जो उदार हो और ग़रीबों का काम निकालने में न चूकता हो।

७—जिस में लाज और शील हो।

८—जो भले आदमियों से मेल रखता हो और बुरे लोगों से दूर भागता हो।

(३२) इन चार बातों से राजा का तेज-प्रताप घट जाता है।

१—तुच्छ लोगों के सामने हँसना।

२—नीच लोगों को अपने पास रखना।

३—औरतों से सलाह करना।

४—दुष्टों को दण्ड न देना।

(३३) इन छः आदमियों को राजा पाले और अपने पास रखे।

१—बुद्धिमान मंत्री।

२—सुयोग्य मुनशी।

३—सुकवि।

४ सुज्ञान ज्योतिषी।

५—विचक्षण विदूषक।

६—विद्वान् वैद्य।

(३४) राजा में ये तीन गुण अवश्य होने चाहिएँ ।

१—न्यायी हो ।

२—वीर हो ।

३—उदार हो ।

(३५) राजा को किसी काम में जल्दी न करनी चाहिए क्योंकि जो काम धीरे और सोच-विचार से होता है वह जल्दी में नहीं हो सकता; किन्तु जल्दी करने से बिगड़ता है ।

(३६) जब कोई मुशकिल आपड़े तो राजा को धीरज धर कर उस का उपाय करना चाहिए और जो बहुत से वैरी भी नज़र आवें तो कभी घबराना नहीं चाहिए वरन् उन में से किसी एक को मिला कर अपना काम निकाल लेना चाहिए ।

(३७) राजा को उचित है कि स्वार्थी लोगों से बचता रहे क्योंकि उनके मुँह पर तो कुछ और होता है मन में कुछ और । वे चाहे कितनी ही मीठी मीठी बातें करें परन्तु उन का परिणाम ज़हर जैसा बुरा ही होगा ।

(३८) राजा को किसी से बुराई नहीं करनी चाहिए और न किसी का बुरा चीतना चाहिए, वरन् उस का यह कर्तव्य है कि सारी प्रजा का भला और कल्याण करे ।

(३९) राजाओं का चित्त समुद्र के समान विशाल और गहरा होना चाहिए । जो चुगलखोरों के कूड़े-करकट से गन्दा न हो जावे और उन की गंभीरता प्रचंड पर्वत के तुल्य हो, जिस को काम और क्रोध की आँधी कभी न हिला सके ।

(४०) राजा को उचित है कि जब कभी क्रोध आ जावे तो उस को रोके और पूरा पूरा सोच विचार किये बिना जल्दी में कोई अनुचित काम न कर बैठे।

(४१) राजा को धीर और गंभीर भी होना चाहिए क्योंकि बहुत से काम अनायास ही निकल जाते हैं और दृढ़ता से हर एक दुर्घटना का उपाय करना चाहिए।

(४२) राजा को किसी प्रकार के भी नशे के वश में न हो जाना चाहिए, क्योंकि वह परमात्मा की तरफ़ से उसकी सृष्टि का रखवाला है। जब रखवाला आपही गाफ़िल और असावधान होजायगा तो वह क्या रखवाली करेगा।

(४३) राजा को शिकार में भी अपना समय नहीं खोना चाहिए। उसके वास्ते तो यही बड़ा शिकार है कि वह पशु-पक्षियों के बदले लोगों के मन और चित्त को सद्व्यवहारों के जाल में फँसा कर शिकार करले।

(३४) राजा में ये तीन गुण अवश्य होने चाहिएँ।

१—न्यायी हो।

२—वीर हो।

३—उदार हो।

(३५) राजा को किसी काम में जल्दी न करनी चाहिए क्योंकि जो काम धीरे और सोच-विचार से होता है वह जल्दी में नहीं हो सकता; किन्तु जल्दी करने से बिगड़ता है।

(३६) जब कोई मुशकिल आपड़े तो राजा को धीरज धर कर उस का उपाय करना चाहिए और जो बहुत से वैरी भी चढ़ आवें तो कभी घबराना नहीं चाहिए वरन् उन में से किसी एक को मिला कर अपना काम निकाल लेना चाहिए।

(३७) राजा को उचित है कि स्वार्थी लोगों से बचता रहे क्योंकि उनके मुँह पर तो कुछ और होता है मन में कुछ और। वे चाहें कितनी ही मीठी मीठी बातें करें परन्तु उन का परिणाम ज़हर जैसा बुराही होगा।

(३८) राजा को किसी से बुराई नहीं करनी चाहिए और न किसी का बुरा चीतना चाहिए, वरन् उस का यह कर्तव्य है कि सारी प्रजा का भला और कल्याण करे।

(३९) राजाओं का चित्त समुद्र के समान विशाल और गहरा होना चाहिए। जो चुग़लख़ोरों के कूड़े-करकट से गन्दा न हो जावे और उन की गंभीरता प्रचंड पर्वत के तुल्य हो, जिस काम और क्रोध की आँधी कभी न हिला सके।

(४०) राजा को उचित है कि जब कभी क्रोध आ जावे तो उस को रोके और पूरा पूरा सोच विचार किये बिना जल्दी में कोई अनुचित काम न कर बैठे।

(४१) राजा को धीर और गंभीर भी होना चाहिए क्योंकि बहुत से काम अनायास ही निकल जाते हैं और दृढ़ता से हर एक दुर्घटना का उपाय करना चाहिए।

(४२) राजा को किसी प्रकार के भी नशे के वश में न हो जाना चाहिए, क्योंकि वह परमात्मा की तरफ़ से उसकी सृष्टि का रखवाला है। जब रखवाला आपही गाफ़िल और असावधान होजायगा तो वह क्या रखवाली करेगा।

(४३) राजा को शिकार में भी अपना समय नहीं खोना चाहिए। उसके वास्ते तो यही बड़ा शिकार है कि वह पशु-पक्षियों के बदले लोगों के मन और चित्त को सद्-व्यवहारों के जाल में फँसा कर शिकार करले।

(४४) राजाओं को सदा जागते रहना चाहिए और सोवें भी तो अचेत न होजावें। क्योंकि प्रजा की सुख-निद्रा उनकी जागृतावस्था से बँधी हुई है। वे जो ज़रा भी ग़फ़लत की नींद में सो जावेंगे तो प्रजा की नींद उड़ जावेगी।

(४५) राजा को जहां तक होसके धन संग्रह करना चाहिए। क्योंकि राज्य के सारे काम धन से चलते हैं। जिस राजा के पास धन होता है उसी के तेज-प्रताप की धूम-धाम दुनिया में होती है

और वही सेना भी अधिक रख सकता है। जिससे दुश्मन दवे रहते हैं, और वही अच्छे अच्छे विद्वानों को संसार से छाँट कर अपने पास रख सकता है जिनसे राज्य का प्रबन्ध शोभा और दृढ़ता पकड़ता है। जिस राज्य में धन नहीं होता वह हमेशा दुश्मनों, करज़दारों और पड़ोसियों से दवा रहता है और उससे यश-कीर्ति और साहस का कोई बड़ा काम नहीं हो सकता।

(४६) धन जोड़ने के लिए राजा को अपनी प्रजा का धन और माल छीन कर अपने ख़ज़ाने में न भरलेना चाहिए। क्योंकि यह तो बड़ा अन्याय है और अन्याय से कमाया हुआ धन कभी किसी काम में बल और बरकत नहीं देता। धन तो सुप्रबन्ध, न्याय और देश को आवाद करने तथा प्रजा को सुख देकर संग्रह करना चाहिए, जिससे लोगों के घर भी बने रहें और राज्य का भण्डार भी भरा रहे।

(४७) प्रजा की धन-सम्पत्ति को राजा अपनी ही धन-सम्पत्ति के समान माने और उस का लोभ न करे। और यह समझे कि प्रजा के पास जो धन है वह मेरा ही है और वक़्त पड़ने पर मेरे ही काम आवेगा। इस लिए कि जिस राजा की प्रजा धनवान् होती है उस से राजा को आपत्-काल में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

(४८) राजा को दुष्टों पर दया न करनी चाहिए क्योंकि जो राजा ऐसा करता है उसको न तो प्रजा-पालन का कुछ यश प्राप्त होता है और न वह वैरियों को जीत सकता है। दुष्टों से प्रजा को सुख-चैन का ... वैरियों से राजा को धन और प्राण का भय रहता है इस लिए

दया छोड़ कर ऐसे घातक भय को जैसे हो सकें वैसे मिटा देना चाहिए।

(४९) राजा को दण्डनीति भी नहीं छोड़नी चाहिए। क्योंकि राजा के वास्ते दण्डनीति भी बहुत ज़रूरी है। जो राजा यथासमय दण्डनीति को काम में नहीं लाता वह यथार्थ मे राजा नहीं है। क्योकि राजा का तप, तेज दंडनीति से ही बढ़ता है। श्रौर दंडनीति से ही उसके राज्य, देश श्रौर धन की रक्षा होती है श्रौर दंडनीति ही हर एक आदमी को मर्यादा भंग नहीं करने देती। बड़े लोगों ने कहा है कि जिस देश का राजा दंडनीति न जानता हो, लोगों को उसके राज्य में रह कर विवाह न करना चाहिए श्रौर न धन-माल जोड़ना चाहिए, क्योंकि दुष्टो के प्रबल हाथो से कभी उनको कल नहीं पड़ेगी।

(५०) राजा जो शारीरिक बंधनात्मक दंड दुष्टो को दंडनीति से देता है वह बड़े काम की बात है। क्योंकि उस से एक तो अन्याय-पीड़ित प्रजा को न्याय मिलता है। दूसरे अन्याय करनेवालों को भय हो जाता है। अतएव राजा को कभी दण्ड देने में ग़फ़लत नहीं रखनी चाहिए।

(५१) कई लोग ऐसे भी होते हैं कि जिनको वाग्दण्ड ही बहुत होता है। श्रौर, कई क़ैद, जुरमाना, जायदाद की ज़ब्ती श्रौर मार-पीट के भी योग्य होते हैं। इसलिए जो अपराधी जिस दंड के योग्य हो उसको वही दंड देना चाहिए श्रौर उसमें कम-जियादा नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह भी बड़ी ख़राबी की बात है। संसार-व्यवहार के बहुत से काम राजा की धाक से ही चलते हैं श्रौर धाक दंडनीति

से बैठती है। राजा को चाहिए कि अपनी धाक अनेक रूप से बनी रक्खे और उसमें किसी प्रकार से भी विघ्न न पड़ने दे नहीं तो धाक कम होजाने से लोगों को डर जाना रहेगा और अन्याय तथा अपराध बढ़ जायँगे।

(५२) बुद्धिमानों ने कहा है कि जो दण्ड का डर न हो तो ऊँट, घोड़े, गधे, बैल और भैंसे कभी अपने सवारों और बोझे को न ले चलें, न नौकर नौकरी करें और न राजा के भाई बेटे उस का हुक्म मानें।

(५३) राजा को कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि मैं अकेला हूँ और मेरा एक पेट है वह थोड़े में भर जायेगा बल्कि यह जानना चाहिए कि जैसे सिंह अपने पेट के वास्ते एक बड़े भैंसे को मारता है, जिस में दूसरे छोटे जानवर भी अपना पेट भर लें वैसे ही मैं भी बढ़ कर दिग्विजय करूँ, अपने राज्य-कटक और वैभव को बढाऊँ जिससे हजारों लाखों आदमियों का भला हो।

(५४) राजा को अपने राज्य की प्रतिष्ठा का ध्यान अपने प्राणों से भी बढ़कर रखना चाहिए क्योंकि उस के बिना राजा की, चाहे वह कितना ही बड़ा हो, पृथ्वी में कुछ प्रतिष्ठा नहीं होती। जो राजा अपनी पूजा-प्रतिष्ठा में फरक नहीं पड़ने देता उस को दूसरे राजा की प्रजा भी आदर और मान की दृष्टि से देखती है और वही सब राजाओं में प्रथम श्रेणी का राजा गिना जाता है।

(५५) राजाओं को यह जरूरत नहीं है कि राज्य के कामों में अपने पराये का कुछ ध्यान करें। या किसी के डील-डौल, ऊँची

चोली. सुन्दर छवि और सोहनी सूरत को काफ़ी समझ लें। वरन उसके गुण देखें। मन, चित्त और मानसिक-शक्ति और बुद्धि वग़ैरह की जाँच कर अपने कामों के लिए आदमियों को चुनें।

(५६) राजाओ के बहुधा बड़े बड़े काम मन्त्रियों से बिगड़ते हैं, इसलिए उनको आलस्य छोड़ कर अवश्य यह काम करना चाहिए कि मंत्रियों और प्रधान मंत्रियों के स्वभाव और बरताव को देखते रहें। जिस मंत्री की हीन प्रकृति और बुरी नीति देखें उसको काम से अलग करदें। राजा के दरबार में बुरा मंत्री उस मगर-मच्छ के समान है. जो एक मीठे पानी के कुंड में रहता हो, जिसका पानी कितना ही स्वादिष्ठ हो परन्तु लोग जहाँ एक बार उसमें मगर-मच्छ को देख लेंगे तो फिर कभी कोई उसमें हाथ न डालेगा। इसी भाँति प्रजा भी डर के मारे राजा से अलग अलग ही रहेगी और कोई आदमी सच्चा सच्चा अपना और उसका हाल राजा से अर्ज़ न कर सकेगा। इसका फल राजा और राज्य के वास्ते कुछ अच्छा न होगा।

(५७) ये छः प्रकार के राजा अवश्य अपने राज्य को खो बैठते हैं।

१—जो शुभचिन्तकों को बेसमझी से बिना सबब और बिना कसूर पास से दूर करदें और जमीन तथा जागीर छीन लें, जिससे वे निर्धन और निराश्रय होकर ख़राब हो जायँ और उनकी जगह अशुभचिन्तक और अयोग्य आदमी जोर पकड़ें जो काम पड़ने पर दगा दे जायँ।

२—दूसरा वह जो यह न जान सके कि किस आदमी को अपना भेदू बनाना चाहिए और किसको नहीं, और किसको बड़ा

काम देना चाहिए और किस को छोटा; तथा किसको सर्वथा ही न देना चाहिए। संधि करने का कौन अवसर है तथा कौन अवसर लड़ने का है।

३—तीसरा वह जहाँ क्रोध और कोप की भीत उठाना चाहिए वहाँ दया और मया का द्वार खोल दे और ख़ुशामदियों की बातों में आ कर सच कहने वालों और शुभचिन्तकों को अपमानित करके निकाल दे।

४—चौथा वह कि जो क्रूरता और क्रोध के वश में हो जावे और किसी बात में अपने मान-गौरव की मर्य्यादा न रक्खे।

(५) पाँचवाँ वह, जो काम की प्रवृत्ति से इन्द्रियों के वश होकर स्त्रियों में पड़ा रहे और राज-काज के समय को शराब और शिकार वग़ैरह में खोकर राज्य के कामों की ख़बर न ले।

६—छठा वह कि जिसके बुरे-भोंडे कामों से राज-विद्रोह का रूप बँध जावे और शत्रु तथा अशुभचिन्तक लोग उपद्रव उठाने को उद्धत हो जावें और वह उनका कुछ उपाय न करे और सहज समझ कर टालता रहे।

(५८) राजा को चाहिए कि जहाँ तक बन सके प्रजा और सेना के दिलों पर अपनी प्रीति और प्रतिष्ठा की नींव जमावे और कभी ऐसी बात न होने दे कि जिससे लोग घृणा करें। जब किसी राजा की क्रूरता, दुष्टता तथा अनीति से उसकी प्रजा और सेना बिगड़

जाती है तो उस समय बड़ी मुश्किल पड़ती है। उसका उपाय बड़े बड़े बुद्धिमानों से भी नहीं बन पड़ता। ऐसी दशा में राजा को चाहिए कि लोगों के राज़ी करने का प्रयत्न करे और अपने स्वभाव को बदल डाले और जो शुभचिन्तक और हितैषी मित्र वा मंत्री हों उनका कहना और मंत्र मान कर प्रजा की नाराज़ी दूर करने में कसर न रक्खे। परन्तु इस पर भी जब देखे कि कुछ फ़ायदा नहीं होता, तथा लोग किसी तरह भी उससे रु नहीं जोड़ते तो अपने बेटे को राज्य देकर अलग हो जावे और फिर कभी किसी काम में न बोले। इस उपाय से जो अंतिम है उसके प्राण बच जायँगे और राज्य भी उसके घराने से नहीं जायगा।

(५९) राजा को चाहिए कि अपनी फ़ौज और मन्त्रीमंडली में एक ही जाति और एक ही देश के आदमियों को न रक्खे। अलग अलग जाति और देश के लोगों को रक्खे कि जिसमें सबके मिल जाने की बहुत कम सम्भावना है। बल्कि राजनीति भी यही कहती है कि एक ही जाति के आदमियों को न बढ़ाया जावे।

दूसरा अध्याय ।

राज-काज करने वालों के लिए उपदेश

(१) जब किसी आदमी को राज्य का काम मिले तो उसको इन पाँच बातों का बरताव करना चाहिए।

१—ग़ुस्सा छोड़ कर धीरज धरे।

२—इन्द्रियों को वश में रक्खे।

३—लोभ और तृष्णा के वश में न हो जावे।

४—सफ़ाई और सचाई बरते; झूठ और फ़रेब से बचे।

५—धीर गंभीर रहे और कोई कठिन काम आ पड़े तो घबरा न जावे।

(२) राज-वर्गियों को चाहिए कि कभी राजा का हित न छोड़ें। राजा को कदाचित् उनकी तरफ़ से कोई संदेह भी हो जावे तो भी जो सच्ची बात हो वह अरज़ करके नमकहलाली दिखावें।

(३) नौकर को अपने स्वामी की सेवा तन मन से परिश्रम करके करनी चाहिए जिस में उसका भला हो। बड़े लोगों ने कहा है कि "करेगा सेवा तो पावेगा मेवा"।

(४) अमीरों और वज़ीरों को चाहिए कि हर हालत में स्याने और भले आदमियों को अपने पास रक्खें और कभी कोई

काम न्याय और धर्म को छोड़ कर न करें, छछोरपन की आदत न डालें. हमेशा धीर वीर और गंभीर बने रहे।

(५) राज्य का काम करने वालों को तीन बातों का बरताव करना चाहिए।

१—ईमानदारी।

२—सचाई।

३—हिम्मत।

(६) राजा से किसी का अपराध न कहना चाहिए जब तक कि राजा की तरफ़ से भरोसा उसके मान लेने का न हो जावे।

(७) बड़े लोगो ने राजा को पहाड़ की उपमा दी है। पहाड़ों में तरह तरह के रत्न, मेवे और जड़ी-बूटी मिलती तो हैं, पर शेर, चीते, साँप. बिच्छू भी वहाँ रहते हैं इस वास्ते बुद्धिमानों को चाहिए कि जहाँ तक हो सके ऐसी जोखिम की जगह से दूर ही रहें और जो वहाँ जाने का काम भी पड़ जावे तो बहुत सोच समझ कर पांव धरें और अपने मान और प्राणों को बचाये रहें।

(८) अमात्यों को इन ४ बातों का बरताव अवश्य करना चाहिए; नहीं करेंगे तो पछताना पड़ेगा।

१—अयोग्य लोगो को काम न सौंपें।

२—कामों में जल्दी न करें।

३—इन्द्रियों के वश में न हो जावें।

४—छोछे आदमियों को मुँह न लगावें।

(९) वज़ीरों को चाहिए कि बादशाहों से नेकी और भलाई की बातों के सिवा और कुछ न कहें। रैयत के और उनके बीच में भंग न डालें। और राजकुमारों से अधिक मेल-मिलाप न रक्खें*।

(१०) प्रधान मंत्रियो को राजाओं की प्रसन्नता का घमण्ड न हो जाना चाहिए। क्योंकि राजाओं को बदलते देर नहीं लगती और उनका मिजाज़ भी सदा एकसा नहीं रहता।

दोहा—राजा जोगी अगम जल, इनकी उलटी रीत।
डरते रहियो परसराम, थोड़ी पालें प्रीत॥

(११) राज्य के अफ़सरों को चाहिए कि अपने मातहतों पर दया-मया रक्खें और उनकी प्रतिष्ठा भंग न करें। उनसे जो कोई

* नौशेरवां बादशाह से वज़ीरों ने पूछा था कि अमुक अमीर से आप क्यों रुष्ट हो गये हो? उसने कहा कि वह युवराज से सटपट करने लग गया था। ऐसे ही जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने एक बनिये को वकील बना कर मरहटों के पास जाने की आज्ञा दी थी, उसने नजर और मुजरा करके अर्ज़ की कि जो हुक्म हो तो महाराज-कुमार की भी नज़र कर आऊं। महाराज ने फरमाया कर आ। वह तो उधर गया और इधर एक कर्मचारी ने ताड़ कर दूसरे के कान में कहा कि अब हज़ूर की वह नज़र नहीं रही है। सो वही उसने प्रत्यक्ष देख लिया कि जब वह महाराज-कुमार की नज़र करके आया तो महाराज ने कह दिया कि अभी ठहर जा हम फरमावें तब जाना, बस इतनी ही बात में उसका अकाज हो गया।

क़सूर भी हो जावे तो अकेले में समझा देवें; कचहरी में बुरा-भला न कहें, क्योंकि इसमें सरकारी ओहदे की हतक़ होती है।

(१२) हाकिमों को चाहिए कि नर्मी और मीठी बोली से लोगों पर हुक्म चलावें। कड़ी या बुरी बात किसी को न कहे, क्योंकि इसमें पहले तो हुकूमत की हतक़ होती है और दूसरे रैयत में दुशमनी और नाराज़ी फैलती है।

(१३) अमीरों और वज़ीरों की भलाई इस बात में है कि जहाँ तक होसके वे अपनी थोड़े दिनों की हुकूमत को दुशमनी और बदमिजाजी से न बिगड़ने दें और यह अच्छी तरह से समझ लें कि जैसे वक़्त निकला चला जाता है वैसे ही दौलत और हुकूमत भी चली जाती है परन्तु एक बुराई भलाई ही रह जाती है।

(१४) दौलत आदमियों की कसौटी है क्योंकि इससे अच्छी बुरी प्रकृति बहुत जल्दी मालूम हो जाती है। सयाने लोगों को चाहिए कि दौलत पा कर अपने को सँभाले रहें और उसके मद में मदोन्मत्त न हो जावें जो अपनी ऊँची जगह से नीचे गिर पड़ने का हेतु है।

(१५) हाकिमों को चाहिए कि किसी को अपनी ज़बान से बुरा-भला न कहें और न कभी कोई 'गाली' मुँह से निकालें, क्योंकि तीर-तलवार का घाव तो अच्छा हो जाता है परन्तु ज़बान

का घाव कभी अच्छा नहीं होता और इस में जीव की भी जोखिम है (१)

(१६) राजा के पास रहने वालों को उचित है कि राजा से बहुत लगे-लिपटे न रहें, रोटी और तवे की मिसाल पर ध्यान देते रहें कि जो रोटी को तवे पर ज़ियादा रक्खें तो जल जावे और जल्दी उतार लें तो कच्ची रह जावे। इसलिए उसको ज़रूरत के मुवाफ़िक़, जिस में न तो वह जले और न कच्ची रहे, तवे पर रखते हैं। इसी तरह उन लोगों को भी राजा के पास रहने की जितनी ज़रूरत हो उतना ही रहना चाहिए।

(१७) परमेश्वर जो किसी को राज का काम दे कर बड़ा करे तो उसको चाहिए कि अपने से नीचे दरजे वालों पर मिहरबानी करे और उनको ऊँचे पद पर पहुँचाने की चिन्ता में रहे कि जिसके पलटे में परमेश्वर उसको और भी बढ़ावें।

(१८) चाँद सितारों से, राजा सरदारों से और सरदार अहलकारों से अच्छा लगता है। इसलिए जहाँ तक हो सके बड़े आदमियों को अपनी सरदारी बढ़ानी चाहिए। जिसका उपाय यही है कि अपने नौकरों के साथ अच्छा बरताव करें और दूसरे लोगों को भी फायदा पहुँचावें जिससे सब लोग उनकी अधीनता में रहें।

---

(१) सलावत ख़ाँ बख्शी ने राव अमरसिंह राठोड़ को गँवार कह दिया, जिस पर उन्होंने तुरत कटारी मार कर उसके प्राण ले लिये। इस विषय का यह एक दोहा याद रखने के योग्य है।

'ग' कहते अमरेस गहि, कर कटार विकराल।
'वार' कहन पायो नहीं, पार कटी तत्काल॥

(१९) एक बड़े आदमी के भाग में बहुत से छोटे आदमियों का साझा होता है इसलिए उसको समझ लेना चाहिए कि वह जितना अधिक उन लोगों को लाभ पहुँचावेगा उतना उसका भाग बढ़ेगा।

(२०) राज-वर्गियों को जो यह चाहना हो कि राजा उनकी इज्ज़त बढ़ावे तो उनको अपने तावेदारों की इज्ज़त बढ़ानी चाहिए क्योंकि जैसा करेंगे वैसा पावेंगे।

(२१) राजाओं का काम बड़े कर्मचारियों अर्थात् दीवानों और बख्शियों से चलता है और उनका छोटे अहलकारों से, सो उनको चाहिए कि अहलकारों का दिल आप भी अपने हाथों में रक्खें और राजाओं से भी ख़ातिर करा कर उनका हौसिला बढ़ाते रहें कि इससे वे राजी होकर अपना अपना काम करने में जितनी मेहनत करेंगे उतनी ही उन ओहदेदारों की नेकनामी होगी।

(२२) अहलकारों में जो कोई आदमी निकम्मा हो या काम बिगाड़ता हो या हुक्म न मानता हो या चोरी करता हो तो ओहदेदारों को चाहिए कि उसको किसी बहाने से बदल देवें। पर उस की रोटी न छुड़ावें क्योंकि रोटी सबको परमेश्वर की तरफ़ से मिलती है।

(२३) जो किसी से कुछ क़सूर हो जावे और वह उसकी माफी मांगे तो उसको माफ़ करदें क्योंकि परमेश्वर भी अपने बन्दों के क़सूर माफ़ करता है।

(२४)—सरकारी कामों में अपने घरू आदमियों को कभी दख़ल न देने दें, जो ऐसा होगा तो राजा को सन्देह होगा और शत्रुओं को छिद्र मिल जायगा ।

(२५)—अफ़सरों को अपने मातहतों से उतनाही सम्बन्ध रखना चाहिए कि जो सरकारी कामों के वास्ते ज़रूरी हों और कभी उनको अपने निज के कामों में शामिल न करना चाहिए ।

(२६)—जब तक किसी मनुष्य के सुयोग्य होने और अच्छा काम करने की जाँच आप न कर लें तब तक कभी उसकी प्रशंसा राजा के सामने न करें । जो बिना परीक्षा ही ऐसा करेंगे तो अवश्य एक दिन लज्जित होना पड़ेगा ।

(२७)—ओहदेदारों को न चाहिए कि राजाओं की मिहरबानी पर भूल कर अपने बराबरवालों से शेख़ी और घमंड का बरताव करें और कारण बिनाही उनके बिगाड़ने की चिन्ता में रहें क्योंकि राजाओं की मिहरबानी का कुछ भरोसा नहीं है, जैसी आज इन पर है वैसी ही कल दूसरों पर भी थी ।

(२८)—बादशाह जो किसी अमीर या वज़ीर का दरजा बढ़ावे तो उसके बराबरवालों को जलना न चाहिए वरन प्रसन्न होना चाहिए कि जो आज इस की इज्जत बढ़ी है तो कल हमारी भी बढ़ेगी ।

(२९)—जिसको कोई काम या ओहदा मिलता है तो बहुत से ओछे आदमी उसकी तरफ़ उसी तरह से दौड़ पड़ते हैं कि जैसे मक्खियाँ गुड़ की तरफ़ । मगर उसको होशियार रहना चाहिए कि

जैसे मक्खियाँ गुड़ को खा भी जाती हैं और उसे गन्दा भी कर जाती हैं। वैसे ही कहीं ये लोग भी उसके साथ कोई हरकत इस तरह की न कर जायँ।

(३०)—जब कोई काम मिले तब उसको सचाई और सफ़ाई से करना चाहिए।

(३१)—जब तक कोई काम तुम्हारे पास रहे उसको बराबर मिहनत और ईमानदारी से दिल लगा कर करो, तुम्हारे अख़्तियारों में चाहे कुछ ही फ़र्क़ क्यों न आगया हो।

(३२)—ओहदेदारों में अपने अपने मतलब से फूट न पड़ना चाहिए कि जिससे मालिक का काम बिगड़ता है। जो नमक-हरामी की बात है।

(३३)—समझदार आदमियों को चाहिए कि जहाँ तक हो सके राज्य का काम लेने से बचें, क्योंकि उसमें सिवा तकलीफ़ों के कुछ नहीं है। और जो यह बोझा सिर के ऊपर आही पड़े तो उसको ऐसी अच्छी तरह से करें कि जिससे उनका भरोसा और दबदबा लोगों में दिन दिन बढता रहे। ऐसा न हो कि दौलत और हुकूमत के नशे में चूर होकर अपनी बात भी खो बैठें।

(३४)—जिसकी गरदन पर राज्य के कामों का बोझ रक्खा गया हो उस को चाहिए कि अपना समय व्यर्थ कामों में न खोवे और ख़ुशामदियों तथा लफंगों की बातों में आ कर अपनी इज़्ज़त को बट्टा न लगावे बल्कि सब कामों का वक़्त बाँध कर हर एक काम उचित वक़्त पर कर ले और निकम्मे आदमियों को मक्खियों की भाँति अपने पास न आने दे।

(३५)—कामवालों को चाहिए कि कोई समय सलाह-सम्मति और मित्रों के मिलाप का भी रक्खें। उस समय दूसरा काम न हो; नहीं तो दोनों में से एक भी न होगा।

तीसरा अध्याय।

सर्वसाधारण के वास्ते उपदेश।

(१)—जो लोग झूठ पसंद नहीं करते और सभा में अच्छी तरह से बोल सकते हैं और जिनको अच्छी बातें करनी आती हैं और जो सब शास्त्रों को जानते हैं वे संसार में सभी जगह आदर और सत्कार पाते हैं।

(२)—जो आदमी बहुत सी मिहनत करके रुपया जोड़ता है और फिर उसको उचित अवसर पर ख़र्च नहीं करता और वाद-हवाई उड़ाता है वह अपना शत्रु आपही है।

(३)—जो लोग अपने जी का सुख चाहते हैं और संसार की आपत्तियों से बचे रहने की चाहना रखते हैं उनके लिए संतोष बहुत बड़ा आधार अपनी मन-वांछित कामनाओं को प्राप्त होने का है। क्योंकि संतोष ही एक ऐसा बाग़ है जिसमें कोई काँटा नहीं है।

(४)—ये तीन काम बिना बड़े पौरुष के पूरे नहीं होते। आदमियों को चाहिए कि पहले अपने पौरुष और साहस की जाँच अच्छी तरह से करलें और फिर इन में हाथ डालें।

१—राजा की नौकरी ।

२—समुद्र का सफ़र ।

३—शत्रुओं का सामना ।

(५) जो आदमी अपना गुण राजाओं से, रोग वैद्यों से और काम मित्रों से छिपाता है, वह बड़ा मूर्ख है ।

(६) आदमी अपनी चाल कभी किसी दशा में न बदले क्योंकि जो लोग ऐसा न करके दूसरों की चाल चलने लगते हैं तो उनका चलन कभी पार नहीं पड़ता बल्कि वे अपने कामों से भी जाते रहते हैं ।

(७) संसार के कष्टों से कभी न घबराना चाहिए क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्यों पर सदा संकट पड़ते हैं। उनकी बुद्धि स्वयं उन्हीं के वास्ते आपत्ति बन जाती है और जो मूर्ख होते हैं वे सदैव सुख-चैन से रहते हैं ।

(८)—हर एक आदमी को चाहिए कि इन बातों के वास्ते जहाँ तक बन पड़े प्रयत्न करे ।

१—मान और धन को बढ़ाना ।

२—जिस बात से अभी या आगे को हानि होती हो उससे बचना ।

३—अपने अर्थ-साधन में यथासाध्य ग़फ़लत न करना ।

४—अपने को उस अनर्थ से बचाना जिसमें फँस गया हो ।

५—अपने लाभ को खींचने और हानि को दूर करने का हरदम ध्यान रखना ।

(९)—अक़लमंद आदमी को चाहिए कि जब मित्रता से शत्रुता और नम्रता से क्रूरता उत्पन्न होने लगे तो फिर अधिक सुस्ती न करे और अपने बचाव के उपाय में रहे। क्योंकि जब दांत बहुत दुखने लगते है तो उस समय उनसे बहुत सा काम निकलते हुए भी उखाड़ डालने के सिवा और कोई इलाज नहीं होता।

(१०)—आदमी को चाहिए कि लोभ और तृष्णा से बचता रहे, नहीं तो उसका परिणाम अच्छा न होगा।

(११)—समझदार आदमी को लड़ाई या ऐसे ही दूसरे कामों में हाथ न डालना चाहिए, क्योंकि इसमें बड़े बड़े ख़तरे हैं। वरन हर एक झगड़े को नरमी और मिठास से निपटा लेना ही अच्छा होता है।

(१२)—इन छः बातों से कभी किसी को भलाई की आशा न रखनी चाहिए।

१—ऐसी बात मानने से कि जो कही जावे और की न जावे।

२—ऐसे माल से, कि जिससे कोई भलाई का काम किया गया हो।

३—ऐसे मित्र से कि जिसकी परीक्षा न की गई हो।

४—ऐसी विद्या से कि जिससे परोपकार न हो।

५—ऐसे दान से कि जो विना संकल्प किया गया हो।

६—ऐसे जीवन से कि जिसमें स्वास्थ्य न हो।

(१३)—हर एक आदमी को उचित है कि मूर्ख और बदचलन लोगों की संगत से दूर रहे कि वह निदान नुक़सान पहुँचायगी, इसके बदले सत्सङ्ग की वांछा करता रहे।

(१४) बुद्धिमान् पुरुष को हर एक काम के प्रारंभ में उसके परिणाम का ध्यान रखना चाहिए।

(१५) दुश्मन की ख़ुशामद और ग़रीबी पर कभी धोका न खाना चाहिए क्योंकि जैसे कौआ हज़ारों वर्ष तक धोने से भी सफ़ेद नहीं होता वैसे ही दुश्मन भी कभी दुश्मनी नहीं छोड़ेगा।

(१६) आदमियों को रुपया जोड़ने में ही अपनी आयु को नहीं बिता देना चाहिए क्योंकि वह अंत में जान का जंजाल हो जाता है।

(१७) ये छः चीज़ें बहुत जल्दी जाती रहती हैं। इनसे अधिक आशा नहीं रखनी चाहिए।

१—बादल की छाँह।
२—स्वार्थी की मित्रता।
३—वेश्या का प्रेम।
४— रूप और जोबन।
५—झूठी प्रशंसा।
६—धन-संपत्ति।

(१८) इन चारों की परीक्षा चार जगह पर करनी चाहिए—सिपाही की लड़ाई में, साहूकार की देन-लेन में, घर वालों की आपत्काल में, मित्रों की दरिद्रता में।

(१९) धन-संपत्ति पर कभी न फूल जाना चाहिए क्योंकि उसका कुछ भरोसा नहीं है। वह एक दिन जाने वाली है।

(२०) दुशमन को क़ाबू में आने के बाद न छोड़ना चाहिए, नहीं तो फिर वह नहीं छोड़ेगा ।

(२१) हर एक आदमी को और विशेष करके अमीरों को अपना भेद छिपाये रखना चाहिए ।

(२२) चार आदमियों को इन चार बातों से कभी छुटकारा न होगा ।

१—अन्यायियो को भय से ।

२—लुच्चो को बदनामी से ।

३—बहुत खाने वालो को रोग से ।

४—बुरी सलाह मानने वालों को नुकसान से ।

(२३) ये छः आदमी छः चीज़ो से विमुख रहते हैं ।

१—अन्याई राजा राज्य की दृढ़ता से ।

२—घमंडी कीर्ति से ।

३—क्रोधी लोक-प्रिय होने से ।

४—कुशील उच्च पद से ।

५—कंजूस सुकृत से ।

६—लालची पुण्य से ।

(२४) आग कर्ज़, रोग और शत्रु को कभी तुच्छ नहीं समझना चाहिए । ये जो थोड़े भी हो तो इनको बढ़ते देर नहीं लगती ।

(२५) नया काम करने से पहले किसी अच्छे सलाह देने वाले की सलाह ले लेनी चाहिए जिससे हानि न हो ।

(२६) इन चार आदमियों को बिना इन चार बातो के कभी कल नहीं पड़ती ।

१—बीमार को चंगे हुए बिना ।

२—बोझ उठाने वाले को बोझ उतारे बिना ।

३—डरपोक को अभय हुए बिना ।

४—क्रोधी को बदला लिये बिना ।

(२७) पृथ्वी भर में ये तीन मनुष्य मित्र करने योग्य हैं ।

१—विद्वान् जिसका सत्सङ्ग दोनों लोक में भला हो ।

२—सज्जन पुरुष, जो दूसरों के कुकर्मों को छिपावे और उनको सुकृत का रास्ता बतावे ।

३—निष्काम मित्र जो सच्चा और सरल हो ।

(२८) इन तीन प्रकार के पुरुषों की मित्रता से बचना चाहिए ।

१—लुच्चे और शोहदे, जिनकी संगत से यह लोक और परलोक दोनो बिगड़ते हैं ।

२—झूठी बातें बनाने वाले और चुगलख़ोर जो नाहक लोगों को लड़ा देते हैं ।

३—मूर्ख और ओछे आदमी जिनसे हानि पहुँचने के सिवा किसी का कुछ भला होने की संभावना नहीं है ।

(२९) हर एक आदमी को चाहिए कि जिस मनुष्य में ये छः गुण पाये जावें उसी से मित्रता करे, ताकि कभी कुछ नुक़सान न पहुँचे ।

१—अवगुणों का छिपाना जिसमें किसी का दोष प्रकट न करे ।

२—गुण-ग्राहकता, कि जितना गुण किसी में देखे उससे दूना लोगों को जनावे ।

३—गंभीरता कि किसी के साथ भलाई कर के कभी मुँह पर न लावे और न दिल में उसकी याद रक्खे।

४—कृतज्ञता, अर्थात् दूसरों का गुण न भूले।

५—धैर्य कि जो किसी से कुसूर भी हो जावे तो गुस्से न हो।

६—क्षमा कि जो कोई माफ़ी मांगे तो उसको माफ़ करदे।

जिसमें ये गुण न हो वह कभी मित्रतायोग्य नहीं है।

(३०) ये तीन आदमी कभी सफलता नहीं पाते।

१—बहुत खाने वाला।

२—अपने बल पर अत्यंत घमंड रखने वाला।

३—वैरी से निश्चिन्त रहने वाला।

(३१) जो आदमी इन पाँच बातों का ध्यान रक्खेगा वह चाहे जहाँ जावे उसका मनोरथ सिद्ध हो जायगा। बहुधा सभी लोग उसके पक्ष में हो जायँगे।

१—बुरे कामों से दूर रहना।

२—अच्छे कामों को अपना कर्तव्य समझना।

३—अपकीर्ति से अपने को बचाना।

४—भलमनसी बरतना।

५—अच्छी बातों में सदा रत रहना।

(३२) बड़े लोगों ने कहा है कि सब से बुरा वह माल है कि जिससे किसी का भला न हो और बहुत ही गाफ़िल वह राजा है जो अपने राज्य और प्रजा की सँभाल जैसी कि करनी चाहिए न

करे। और सबसे अधम वह मित्र है जो मित्रों को विपत्ति में सहायता न दे और पहले दरजे की बदचलन वह स्त्री है जो अपने पति से दिल में राज़ी न हो और परले सिरे का कपूत वह लड़का है जो माँ-बाप की सेवा न करे। सब शहरों से उजाड़ वह शहर है जिसमें नाज सस्ता और सुख-चैन न हो और सारी सभाओं में निषिद्ध वह सभा है जिसमें शुद्ध मन के मेम्बर न हों।

(३३) जो मित्र अच्छी सलाह दे, वही वास्तव में मित्र है और जो बुरी सलाह दे वह मित्र नहीं शत्रु है।

(३४) मित्रता प्रीति से बढ़ती है और राज्य सत्ता न्याय से।

(३५) दुश्मन की सेना से उस समय डरना चाहिए कि जब वह जुड़ती हो न कि जब वह बिखरती हो।

(३६) ऐश्वर्य्य परमेश्वर के भजन से बढ़ता है और राज्य उदारता से।

(३७) राजा को अत्याचार से, पण्डितों को लोभ से, संतों को कपट से अपकीर्ति प्राप्त होती है।

(३८) इन्द्रियों को वश में रखने से धर्म, दान करने से धन और थोड़ा आहार-व्यवहार करने से शरीर बना रहता है।

(३९) ये चार बातें मूर्खता की निशानी हैं।

१—अपने से अधिक बलवान् से भिड़ना।

२—जिसने कोई काम नहीं किया है उसका भरोसा करना।

३—स्त्रियों के छल-कपट से ग़ाफ़िल रहना।

४—लड़कों के साथ बहुत उठना बैठना।

(४०) उज्र. करनेवालों का उज्र. सुनना और उपदेश देनेवालों का उपदेश मानना चाहिए।

(४१) ये दो आदमी अफ़सोस के लायक हैं।

१—जो योग्य हो कर विद्या न पढ़े।

२—जो अयोग्य होकर उसकी अभिलाषा करे।

(४२) शिक्षा पात्र को न देना अन्याय है और कुपात्र को देना मूर्खता है।

(४३) संसार का सुख बिजली की चमक से और जगत् की प्रीति बादल के अँधेरे से भी कम ठहरने वाली हैं।

(४४) दुनिया में आदमी की मिसाल उस सवार की सी है जो गर्मियों में दुपहरी की धूप टालने के लिए किसी वृक्ष के नीचे ठहर गया हो।

(४५) विद्या गहना है और कुलीनता रूप है। जैसे सुन्दर स्त्रियों को गहना अच्छा लगता है वैसे ही विद्या भी सज्जन पुरुषों को शोभती है।

(४६) धनवानों को कंजूसी, पण्डितों को शेख़ी, स्त्रियों को निर्लज्जता और पुरुषों को असत्यता बदनाम कर देती है।

(४७) प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि तड़के उठते ही अपना रूप काँच में देख ले, जो अच्छा दिखाई दे तो स्वभाव को भी अच्छा बनावे जिससे दोनों अच्छे हो जायँ और जो रूप अच्छा न देखे तो स्वभाव ही को ठीक करे ताकि दो बुराइयाँ इकट्ठी न हो जायँ।

(४८) जवानी की कदर बूढ़ों को, तन्दुरुस्ती की बीमारों को और अमीरी की ग़रीबों को होती है।

(४९) दुष्ट की छाया से ऐसे बचे रहो जैसे चौमासे में कीचड़ के छींटों से।

(५०) अपने सभी काम परमेश्वर को सौंप दो। उपाय और उद्यम का कुछ भरोसा न करो।

(५१) मित्रों पर दया करो और शत्रुओं से मीठा बोलो जिससे मित्र बढ़ें और शत्रु शत्रुता छोड़ दें।

(५२) झूठ मत बोलो। झूठा आदमी हमेशा ख़राब रहता है और कोई उसका भरोसा नहीं करता।

(५३) औरों के वास्ते कुआ मत खोदो। शायद कहीं तुम्हीं उसमें औंधे मुँह गिर पड़ो।

(५४) जो बात भगवद्भजन से शून्य है वह मथवाय (मस्तक-पीड़ा) है। जो चुप विचार से शून्य है वह भूल है और जो नज़र-लज्जा से शून्य है वह वृथा है।

(५५) जो विद्या पढ़कर उस पर न चले वह अभागा है।

(५६) धन संपत्ति से कंगाली, बल-विक्रम से विनय और घमंड से, ग़रीबी उत्तम है।

(५७) बुरा करने वाले के साथ बुरा न करना वीरता है।

(५८) जो सब का भला चाहे और भला करे वही सबसे भला है।

(५९) जो ईश्वर से, मृत्यु से और भला करने से गाफ़िल न रहे वही बड़ा बुद्धिमान् है।

(६०) मित्र को शत्रु के पास बैठा देख कर बुरा न मानना चाहिए क्योंकि जो वह पक्का मित्र है तो कुछ डर नहीं और जो कच्चा है तो ऐसा मित्र शत्रुओं को सौंपना ही भला।

(६१) मनुष्य को दो शत्रुओं में ऐसी बात कहना चाहिए कि जो वे एक भी हो जावें तो अपने को शरमाना न पड़े।

(६२) मित्र तीन प्रकार के होते हैं।

१—अपना मित्र।

२—मित्र का मित्र।

३—शत्रु का शत्रु।

(६३) शत्रु भी तीन प्रकार के होते हैं।

१—अपना शत्रु।

२—मित्र का शत्रु।

३—शत्रु का मित्र।

(६४) जो कोई शत्रुओं को मित्र न बना सके तो मित्रों को शत्रु तो न बनावे।

(६५) जांचे बिना किसी को मित्र न बनाना चाहिए।

(६६) जो लोगों को अपना शत्रु बना ले और किसी की बात न सुने और किसी का अपराध क्षमा न करे उसको मनुष्य न समझना चाहिए।

(६७) आठ जनों को आठ जगह जांचना चाहिए।

१—वीर को रण में।

२—किसान को खेती में।

३—बड़े लोगों को क्रोध में।

४—व्यापारियों को हिसाब में।

५—धनवानों को आवश्यकता में।

६—सज्जनों को विपत्ति में।

७—तपस्वियों को परलोक साधन में।

८—पंडितों को शास्त्रार्थ में।

(६८) देश की शोभा बुद्धिमानों से होती है और धर्म की तपस्वियों से।

(६९) राजाओं को पंडितों के उपदेश की आवश्यकता है और पंडितों को राजाओं की उदारता की।

(७०) धन बिना व्यापार के, विद्या बिना शास्त्रार्थ के और राज्य बिना दंड नीति के नहीं रह सकता।

(७१) बुरों पर दया करना अच्छों का बुरा करना है और दुष्टों को क्षमा करना अन्याय-पीड़ितों का अनर्थ करना है।

(७२) बादशाहों की मिहरबानी और स्त्रियों की प्रीति दम-भर में बदल जाती है।

(७३) अपने मन का पूरा भेद मित्रों को भी न देना चाहिए कि शायद वह कभी शत्रु हो जायँ तो मुशकिल पड़े और शत्रु की अधिक बुराई न करनी चाहिए कि जो कभी वह मित्र बन जाय तो शर्माना पड़े।

(७४) शत्रु के लल्लो-चप्पो और लटकों से धोखे में न आ जाना चाहिए क्योंकि शायद वह उससे अपनी शत्रुता को पुष्ट करता हो। जब मित्रों की मित्रता का ही पूरा भरोसा नहीं हो सकता तो फिर शत्रु की मित्रता की बात ही क्या है।

(७५) जब तक काम रुपये से निकले, जान को जोखिम में न डालना चाहिए।

(७६) शत्रु यदि कोई उपदेश करे तो उसे मानना तो न चाहिए परन्तु सुन अवश्य लेना चाहिए।

(७७) अत्यंत क्रोध बिगाड़ करता है और हद से बढ़ी हुई मिहरबानी भी पत खो देती है।

(७८) बिना धैर्य का राजा, और बिना विवेक का ब्राह्मण धर्म का शत्रु है।

(७९) शत्रु के धोखे, और ख़ुशामदी की स्तुति से हमेशा सावधान रहना चाहिए, क्योंकि दोनों ठग हैं और ठगाई करते हैं।

(८०) नुकता-चीनी से कभी नाराज़ न होना चाहिए क्योंकि उसके बिना भूल नहीं जानी जाती।

(८१) मनुष्य संतोष से धनी होता है, पूंजी से नहीं।

(८२) मूर्ख को चुप रहना ही अच्छा है जिसमें उस का भरम बना रहे।

(८३) संगति का फल अवश्य लगता है इसलिए जहाँ तक बन पड़े अच्छी संगति में रहना चाहिए।

(८४) नादान दोस्त से दाना दुशमन अच्छा होता है। मारवाड़ी कहावत है कि "भोलो सेण दुशमन री गरज़ साजे।

(८५) दुशमन चाहे कितना ही भोला हो पर दुशमन है, उसको भोला समझ कर असावधान न रहना चाहिए।

(८६) मनो-कामनाओं की सफलता धैर्य और दृढ़ता से होती है।

(८७) यदि अपनी वृद्धि चाहो तो दूसरों के साथ भलाई करो और सरदार बने रहना चाहो तो लोगों को देने दिलाने, उपकार तथा सत्कार करने से राज़ी रक्खो।

(८८) दरिद्र के दुख की दवाई हुनर है इसलिए जहाँ तक बन पड़े हुनर सीखना चाहिए। क्योंकि जिन को कुछ भी हुनर आता है वे कभी नंगे-भूखे नहीं रहते।

(८९) मित्रता के चार साधन है।

१—मित्र के घर जावे और उसे अपने घर बुलावे।

२—दूसरे यह कि आप उस के घर जाकर कुछ खाय और उसे अपने घर लाकर खिलाये।

३—उसे कुछ दे और आप उससे कुछ ले।

४—आप उससे अपने मन का कुछ भेद कहे और कुछ भेद उसके दिल का ले।

यह अन्तिम दरजा दोस्ती का है यहाँ आ कर दोस्ती पूरी और पक्की हो जाती है।

(९०) जिसको धन, संपत्ति, बेफ़िक्री और पूरी तन्दुरुस्ती होती है उसी की दुनिया में बहुत अच्छी गुजरती है।

(९१) इन छ बातों से आदमी अपने कारबार में उन्नति नहीं कर सकता।

१—आलस ।

२—स्त्रियों से अधिक प्रेम ।

३—सदा रोगी रहना ।

४—अति-तृष्णा ।

५—उन्माद ।

६—भय ।

(९२) जिस पुरुष में कोई अवगुण हो वही दूसरों के भी अवगुण ढूँढ़ा करता है ।

(९३) जो आवश्यकता पड़ने पर बात करता है और आवश्यकता बिना बोलता भी नहीं है वही बड़ा बुद्धिमान् है ।

(९४) वह बड़ा भाग्यवान् है कि जो दूसरों की व्यवस्था देख कर कुछ सीखता है और बड़ा अभागा वह है कि जिस की व्यवस्था से और लोग शिक्षा लेते हैं ।

(९५) प्रत्येक काम प्रारंभ करने से पहले परमात्मा से प्रार्थना करना चाहिए ताकि वह कुशल-पूर्वक पूरा हो जाय ।

(९६) भलामानस वही है जो दुख सुख को समान समझे ।

(९७) इन चार बातों का अवसर कभी नहीं चूकना चाहिए ।

१—न्याई राजा परोपकार के लिए कोई वस्तु माँगे, तो दे देनी चाहिए ।

२—कोई भिक्षुक परमात्मा के निमित्त कोई प्रश्न करे तो पूरा करना चाहिए ।

३—कोई होनहार विद्यार्थी कुछ पढना चाहे तो अवश्य पढाना चाहिए।

४—कोई मित्र अपने हित के लिए कोई दान चाहे तो कर देना चाहिए।

(९८) ये तीन आदमी सदा दुखी रहते हैं।

१—जो दिन रात कुकर्म करता रहे।

२—जो हाथ चलने पर कोई अच्छा काम न करे।

३—जो बिना सोचे समझे कोई काम कर बैठे।

(९९) इन तीन आदमियों की समझ अच्छी नहीं है।

१—जो सफ़ेद कपड़े पहन कर यह कल्पना करे कि मेरी पोशाक हमेशा सफ़ेद रहेगी।

२—वह धोबी जो बढिया वस्त्र धारण कर के पानी में कपड़े धोवे।

३—वह व्यापारी जो सुन्दर स्त्री को देश में छोड कर परदेश जावे।

(१००) ये तीन आदमी अपने ऊपर आप आपत्ति लाते हैं।

१—जो लड़ाई में अपने बचाव से असावधान रहे।

२—जो अपुत्र हो कर भी अत्यन्त धन संग्रह करे।

३—जो बूढ़ा हो कर जवान युवती से विवाह करे।

(१०१) ये पांच प्रकार की स्त्रियाँ विशेष रूप से अधिक प्रेम-पात्र हैं।

१—जो सुन्दर, सुशील और सत्यवती हो।

२—जो विदूषी, सहनशीला और शुद्ध हृदय वाली हो।

३—जो हर एक काम में अच्छी सलाह दे और क्रोध के समय भी अधीन रहे।

४—जो बुरे-भले समय में साथ न छोड़े।

५—जो शुभ और शुभकारी हो।

(१०२) बुद्धिमानों को इन दो पुरुषों से दूर ही रहना चाहिए।

१—जो ईश्वर से नहीं डरता।

२—जिस की समझ में बुराई भलाई और मित्रता तथा वैरभाव समान हैं।

(१०३) ये तीन आदमी घृणा के योग्य हैं।

१—वह दास जो अपने स्वामी का मित्र हो और स्वामी उससे हंसी-ठट्ठा करता हो और अश्लील बरताव रखता हो।

२—वह जो अपने स्वामी का धन चुरा चुरा कर उससे भी अधिक धनवान् हो गया हो।

३—वह जो अपने स्वामी का भेद पा कर अपनी मर्यादा उल्लंघन कर गया हो।

(१०४) ये आठ बातें आठ बातों से ही होती हैं।

१—स्त्री का मान पति से।

२—संतान की पालना मा-बाप से।

३—शिष्य की शिक्षा गुरु से।

४—राजा की शक्ति सेना और सुयोग्य मंत्रियों से।

५—सिद्धों की सिद्धाई जितेन्द्रिय होने से।

६—प्रजा का सुख सावधान राजा से।

७—राज्य की दृढ़ता न्याय से।

८—न्याय की शोभा बुद्धि से।

(१०५) ये सात बातें बहुत बुरी हैं।

१—ईश्वर के भजन में आलस्य।

२—लोगों का भरम फोड़ना।

३—अनाथ बालकों के साथ भलाई न करना।

४—हर एक से दुर्भावना।

५—मित्रों से छल और कपट।

६—पराया माल ताकना।

७—बलवानों की अवज्ञा।

(१०६) किसी का दोष प्रकट न करना चाहिए क्योंकि उधर तो वह बदनाम होगा और इधर अपना विश्वास जाता रहेगा।

(१०७) सब के हित की बात करनी चाहिए, चाहे इसमें कुछ हानि भी होती हो।

चौथा अध्याय ।

उपदेश दृष्टांतों के साथ ।

१—शत्रु की नम्रता और लल्लोपत्तो से धोखे में नहीं आ जाना चाहिए। क्योंकि चीता हिरन को झुक झुक कर ही मारता है।

२—बड़े लोगों के साथ रहने से छोटा आदमी भी बड़ी जगह पहुँच जाता है जैसे ढाक का पत्ता पान के साथ राजाओं के हाथ तक जा पहुँचता है।

(३) मनुष्य सीधी चाल चलने से बड़े पद को पहुँचता है। जैसे शतरंज का पियादा सीधी चाल चलते चलते वज़ीर हो जाता है।

(४) अच्छी बुरी प्रकृतियाँ कभी अपना स्वभाव नहीं बदलतीं। जैसे गाय घास खाती है और दूध देती है। साँप दूध पीता है और ज़हर उगलता है।

५—किसी को तुच्छ देख कर घृणा न करना चाहिए। कौन जाने कि उसमें कोई बड़ा काम कर जाने का गुण हो? जैसे देखो बड़ का बीज कितना छोटा होता है और उससे कितना बड़ा वृक्ष उत्पन्न हो जाता है।

६—जिनके अंतःकरण गंभीर होते हैं, वे छोटे हो कर भी बड़े बड़े काम कर निकलते हैं। जैसे आँख की पुतली का तिल कितना छोटा है तो भी वह आकाश को अपने अंदर दिखा देता है।

७—बहुत सी सलाहों से बात बिगड़ जाती है। "घनी दाई पेट फोड़े' की मारवाड़ी कहावत प्रत्यक्ष ही है।

८—चाल चूक जाने से छोटे आदमी भी बड़े आदमी को हरा देते हैं। देखो शतरंज का बादशाह जो किला बाँध कर नहीं चलता है तो पियादे से मात खा जाता है।

९—आदमी अपनी समझ को दूसरों की समझ से न टकराये तब तक उसको अपनी समझ का दोष नहीं जान पड़ता। हाथी जब तक पहाड़ के नीचे नहीं जाता पहाड़ को अपने से बड़ा नहीं मानता।

(१०) जो वस्तु परिश्रम से प्राप्त होती है वह ठहरती भी है और काम भी अधिक देती है। जैसे चीनी के बासन जो बहुत समय तक परिश्रम से बनते हैं तो बहुत समय तक रहते भी हैं और काम भी ख़ूब देते हैं।

(११) जो लोग नीच प्रकृति के हैं उन्हें चाहे जितनी शिक्षा दो, परन्तु वे अपना स्वभाव कभी न छोड़ेंगे। कड़ुए बादाम को चाहे कितनी ही खाँड में लपेटो परन्तु उसका कड़ुवापन कभी न जायगा।

(१२) दग़ाबाज़ों को शिक्षा देने से वे और दग़ाबाज़ी में उन्नति करेंगे। यदि बगले को शिक्षा दी जायगी तो वह मछलियों को और सफ़ाई और चालाकी से मारेगा।

(१३) किसी को ऊपर से अच्छा देख कर यह न समझ लेना चाहिए कि वह भीतर से भी अच्छा होगा। परन्तु बहुधा ऐसा नहीं होता। देखो कपास बाहर से तो कैसी कोमल जान पड़ती है और उसके भीतर का बिनौला कितना कड़ा होता है।

(१४) जो आदमी विद्या पढ़े और उसके अनुसार काम न करे वह उस किसान के समान है कि जिसने परिश्रम करके खेत तो सुधार लिया हो, परन्तु उसमें कोई बीज न बोया हो।

(१५) कड़ा वचन पत्थर के समान है जिस से लोगों का दिल टूट जाता है और उसके मारे उमर भर के पाले हुए सेवक भी अपने स्वामी को छोड़ जाते हैं और मीठी बोली एक मीठे झरने के समान है जिसकी ओर मनुष्य तो मनुष्य, परन्तु पशु भी दौड़े चले आते हैं।

(१६) किसी का दिल नहीं तोड़ना चाहिए, क्योंकि दिल पानी के बुलबुले जैसा नाज़ुक होता है और टूटे पीछे फिर नहीं जुड़ता।

(१७) पण्डितो को मूर्खों की मंडली में चुप रहना चाहिए, क्योंकि इन के गप्पाष्टक के आगे उनकी कुछ नहीं चलेगी; जैसे मैना का शब्द कौओं की कांव कांव में दब जाता है।

(१८) अच्छे लोगों की संगति गंधी की दुकान है "लेना देना कुछ नहीं तो आवे बास सुबास" और दुष्टों की संगति कोयलों के सदृश है कि जो सुलगते हों तो हाथ-पांव जलादें और बुझे हों तो कपड़े काले करें।

(१९) नीच लोगों से कभी भलाई की आशा नहीं रखनी चाहिए नरसल (नरकट, बरू) से कभी खांड नहीं बनेगी।

(२०) जो भला आदमी होगा उसको उपदेश का एक अक्षर भी काफ़ी है। जैसे भले घोड़े को एक कोड़ा बहुत होता है वैसे भले आदमी को एक बात बहुत होती है।

(२१) कई मित्र तो भोजन के समान होते हैं कि उनके बिना काम ही नहीं चल सकता और कई दवा के समान होते हैं जिन से कभी कभी काम पड़ता है।

(२२) उच्च पद पर पहुँचना तो मुश्किल से होता है और गिर पड़ना सहज में ही हो जाता है। जैसे भारी पत्थर बहुत परिश्रम और देर से ऊपर पहुँचता है और नीचे को ज़रा से ही धक्के में गिर पड़ता है।

(२३) जो घटे और बढ़े वह चाँद है। जो बढ़े ही बढ़े वह तृष्णा है। जो घटे न बढ़े वह भाग्य है। जो घटे ही घटे वह आयुष्य है।

(२४) भाई बंधु आँख और भौं के मिसाल हैं। जो पास रहने पर भी एक दूसरे को नहीं देख सकते और मिले हुए होने पर भी आपस में टेढ़े ही रहते हैं।

(२५) नीच लोगों को विद्या सिखाना ऐसा है जैसे रत्न को कीचड़ में फेंक देना।

(२६) जिस काम से कुछ भी सफलता की आशा हो, उसका तो उद्यम करना चाहिए। क्योंकि प्यास उस तालाब पर जाने से बुझेगी जिसमें पानी हो। सूखे तालाब पर जाने से समय और श्रम व्यर्थ खोने के सिवा और कुछ लाभ न होगा।

(२७) आदमी के गुण और अवगुण की पहचान उसकी बोल-चाल से करना चाहिए जैसे काग और मैना बोली से ही पहचाने जाते हैं।

(२८) सज्जन पुरुषों का क्रोध थोड़ी सी नम्रता से शान्त हो जाता है। जैसे दूध का उफान थोड़ा सा ठंडा पानी डालने से बैठ जाता है।

(२९) जहां तक हो सके काम पड़े बिना किसी के पास नहीं जाना चाहिए। क्योंकि इसमें मनुष्य का मान घटता है, जैसे चन्द्रमा की कला सूरज के घर में बारम्बार जाने से कम हो जाती है।

(३०) उपाय भी वह करना चाहिए कि जो सफल होजावे। असंभव बात का उद्योग करना मूर्खता है, पहाड़ पर खोदने से क्या पानी निकलेगा?

(३१) मनुष्य को संतोष और धैर्य से अपनी मनो-कामनाओं के सिद्ध होने की बाट जोहना चाहिए। काम समय आने से होता है, जल्दी करने से कुछ नहीं होता। वृक्ष में चाहे कितना पानी और खात नित्य क्यों न दिया जाय, पर वह तो अपनी ऋतु आने पर ही फल देगा।

(३२) बड़े आदमियों को छोटे आदमियों का पालन करना चाहिए। इससे उनकी बड़ाई और सरदारी बनी रहती है और बहुत सी मिहनत और आपत्ति टल जाती है, जैसे पायंदाज़ से चादनी मैली नहीं होती।

(३३) दूषित लोगों की संगति कभी नहीं करनी चाहिए क्योंकि उन के दोष कुछ न कुछ व्यापक हुए बिना नहीं रहते। गूंगों को समझाने वाला आप भी गूंगों की सी बातें करने लगता है।

(३४) अच्छी जगह बैठने से सुख और बुरी जगह बैठने से दुःख होता है। माली और लुहार की दुकानों पर बैठ कर देख लो कि वहाँ तो सुगंध आवेगी, मन प्रसन्न होगा और यहाँ कपड़े काले होंगे, या आग की चिनगारियाँ उड़ उड़ कर शरीर को जला देंगी।

(३५) जो अवसर और समय देख कर काम करता है वह अवश्य कृत-कार्य हो जाता है। जैसे दाव को विचार कर खेलने वाला कभी बाज़ी नहीं हारता।

(३६) आँख और कान में चार ही अंगुल का अंतर है। परन्तु जो कोई किसी बात को सुन कर नहीं देख लेता, या उसका निरूपण नहीं करता तो उसमें कोसों का अंतर पड जाता है।

(३७) हर एक बात समता के साथ करना चाहिए। घट-बढ से काम बिगड जाता है। जैसे खेती न्यूनाधिक वर्षा होने से नष्ट हो जाती है।

(३८) नीच और नालायक लोगों को छेड़ने से कष्ट होता है। जैसे कीचड़ में पत्थर मारने से छींटे उड़ कर कपडे बिगाड़ देते हैं।

(३९) यदि कोई कला और विद्या नहीं भी आती हो तो उसके सीखने में कभी न रुकना चाहिए। रत्न जो विष्ठा में भी पड़ा हो तो उसके उठा लेने में कोई लांच्छन नहीं लगता।

(४०) आदमी जब दो सुन ले तब एक कहे, क्योंकि परमात्मा ने कान दो दिये हैं और ज़बान एक ही दी है।

बालसखा पुस्तकमाला । पुस्तक तेईसवीं ।

बाल-भोजप्रबन्ध

अर्थात्

भोजप्रबन्ध का हिन्दी में सरल सार

लेखक

[धनमऊ (ज़िला मैनपुरी) निवासी]

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१७

द्वितीय बार] [मूल्य ॥)

Printed and published by Apurva Krishna Bose,
at the Indian Press, Allahabad.

सूची

विषय | पृष्ठ

विषय — पृष्ठ



भूमिका

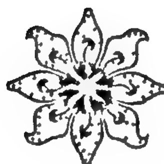
संस्कृत में एक 'भोजप्रबन्ध' नामक पुस्तक है। इस पुस्तक का संस्कृतज्ञ अच्छा आदर करते हैं। राजा भोज का जन्म से लेकर अन्त तक इसमें वृत्तान्त है। यह राजा संस्कृत विद्या का जैसा आदर करने वाला हुआ है आज तक वैसा दूसरा कोई मनुष्य नहीं हुआ। इसने अपने राज्य में यहाँ तक आज्ञा दे दी थी कि जो संस्कृतज्ञ है वह चाहे जिस जाति का हो मेरे राज्य में आनन्दपूर्वक रहे और जो संस्कृत से अनभिज्ञ है—जो संस्कृत नहीं बोल सकता—वह चाहे मेरे कुटुम्ब का ही हो तो भी मेरे राज्य में नहीं रह सकता। ऐसे विद्याव्यसनी मनुष्य का कुछ हाल हिन्दी-पाठकों को भी मालूम हो सके इसी अभिप्राय से मैंने इस पुस्तक को लिखा है।

भोजप्रबन्ध बड़ी पुस्तक है। उसमें संस्कृत विद्या के चुटकुले अधिक हैं। वे चुटकुले संस्कृतज्ञों के लिए अधिक लाभदायक हैं। कहीं कहीं हमने कुछ श्लोक भी लिख दिये हैं। हिन्दी-पाठकों के लिए हमने इसमें से उपयोगी बातें लिख कर इस पुस्तक

को समाप्त किया है। पूरे भोजप्रबन्ध का यह अनुवाद नहीं है। शृंगार-विषय को तो हमने बिल्कुल ही छोड़ दिया है।

इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों को बहुत सी उपयोगी बातें मालूम होंगी।

१९११ } सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी।



बाल-भोज-प्रबन्ध

पहला परिच्छेद

राजा भोज का परिचय



चीन समय में इस आर्यावर्त्त देश में बड़े बड़े प्रतापी, तेजस्वी, धर्मधुरन्धर और अत्यन्त पराक्रमी अनेक राजा हो गये हैं। सूर्यवंश और चन्द्रवंश इन दोनों ही वंशों के राजा बड़े बुद्धिमान् और परोपकारी थे। 'जो चलता है वही गिरा करता है' इसके अनुसार पीछे से ऐसा समय आ गया कि इस देश की अत्यन्त हीन अवस्था हो गई।

सब कला-कौशल और सब विद्यायें नष्ट हो गईं। लोगों ने पढ़ना लिखना छोड़ दिया और आपस में रात दिन लड़ाई झगडा करना अपना कर्त्तव्य समझ लिया।

जैसा राजा होता है प्रजा भी वैसीही हो जाती है। जब राजा ही मूर्ख होने लगे तब प्रजा का तो कहना ही क्या था। राजाओं ने पढ़ना लिखना छोड़ दिया, प्रजा ने उनसे भी पहले विद्या से अपने हाथ धो लिये। मतलब यह कि जिस राजा भोज का चरित हम लिखते हैं उसके समय से कुछ पूर्व इस देश की बुरी हालत हो गई थी। लोगों ने अपना धर्म-कर्म सब त्याग दिया था।

बारहवीं शताब्दी में राजा भोज हुआ। वह स्वयं बडा विद्वान् था। उसने जब देखा कि इस देश में मूर्खता छाई हुई है, मनुष्यों में मनुष्यत्व कुछ भी नहीं पाया जाता, तब उसने विद्या बढ़ाने के लिए बड़े बड़े उपाय किये। उसने पढ़े लिखे मनुष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा की। वह विद्या की उन्नति इतनी चाहता था कि विद्या के सामने वह अपने न्यायोपार्जित धन की कुछ भी पर्वा न करता था। एक एक श्लोक बनाने वाले को उसने लाखों रुपया देते हुए कुछ भी संकोच न किया। वह श्लोक बनाने वालों का बड़ा ही आदर करता था। वह चाहता था कि जैसे हो विद्या की उन्नति हो।

राजा भोज ने, जहाँ कहीं विद्वान् मिले, अपने पास बुलवाये। जब कोई आकर उससे कहता था कि अमुक स्थान का पण्डित बड़ा विद्वान् है तब वह तत्काल ही उसको अपने पास बुलाने का उपाय किया करता था। उसने अपनी

सभा में देश-देशान्तर के विद्वान् बुला कर रक्खे। उसने अपने राजनियमों में एक ऐसा नियम बना दिया था, कि "मेरी राजधानी धारा नगरी में एक भी मूर्ख न रहने पावे। चाहे लड़का हो, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो, चाहे स्त्री हो, चाहे लड़की हो: कोई भी हो हर एक मनुष्य को विद्या पढ़नी चाहिए। बिना विद्या के हमारे राज में कोई न रह सकेगा।"

जहाँ राजा का इस तरह का क़ानून हो उस देश के सौभाग्य का कहना ही क्या है! जिस देश को सुधारने के लिए स्वयं राजा ही इस तरह का उद्योग करे उस देश के सुधरने में कमी क्या रह सकती है। उस समय प्रायः सभी मनुष्य मूर्ख थे। उनमें से कोई अपना काम चलाने के योग्य मामूली पढ़े लिखे थे, कोई कोई अक्षरमात्र जानते थे। राजा भोज को जब अच्छी तरह मालूम हो गया कि हमारी प्रजा बिलकुल मूर्ख है, कोई भी पढ़ा लिखा नहीं है तब उसने विद्या के पढ़ने का सबको उपदेश दिया। उसने आज्ञा देदी कि सब को, मनुष्यमात्र को—विद्या पढ़नी चाहिए।

यही नहीं कि राजा भोज ने क़ानून बना दिया हो—केवल यह आज्ञा ही दी हो कि सबको विद्या पढ़नी चाहिए। किन्तु उसने अपने रुपये से सैकड़ों विद्यालय बनवाये। उनमें देश-देशान्तर से ढूँढ ढूँढ कर अच्छे अच्छे विद्वान् अध्यापक रक्खे। पढ़ने में जो असमर्थ थे—अपना कारोबार छोड़ कर जो पढ़ नहीं सकते थे—उनको अपने रुपये से सहायता दे कर पढ़वाया।

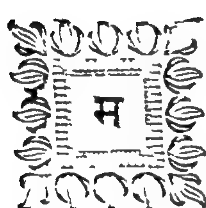
उस समय राजा भोज विद्या में सबसे बढ़ कर माना

जाता था। उसकी विद्वत्ता जगद्विख्यात थी। उसकी धारा नगरी राजा इन्द्र की अमरावती की तरह विबुध जनों से अलङ्कृत और देदीप्यमान हो रही थी। सारे देश और रजवाड़ों में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मनुष्य समझते थे कि धारा नगरी विद्या का भण्डार है। इसी लिए देश-देशान्तर के विद्वान् वहाँ आते थे और अपनी विद्या का लाभ प्राप्त करते थे।



दूसरा परिच्छेद

राजा भोज का जन्म और राजा सिन्धुल का वैराग्य



महाराजा विक्रमादित्य परमार के वंश में सिन्धुल नामक एक राजा हुआ। यह उज्जयिनी नगरी में राज्य करता था। इसका ध्यान प्रजा को सुखी रखने का सदा रहता था। यह चाहता रहता था कि हमारी प्रजा को किसी तरह का दुख न हो। इसी लिए इसकी प्रजा बड़े सुख में रहती थी और राजा से सदा बड़ी प्रसन्न रहती थी। प्रजा सदा इसके अभ्युदय को चाहती थी। प्रजा के सन्तुष्ट रहने से यह भी बड़ा सुखी रहता था। इसको किसी प्रकार का दुःख न था। प्रजा की ओर से यह सदा निर्भय रहता था। अगर इसको कोई दुख था तो वह केवल पुत्र के न होने का था। पर यह दुख कुछ छोटा न था किन्तु बहुत बड़ा

था। उसे रात दिन यही चिन्ता रहा करती थी कि क्या करूँ, जिस से पुत्र का दर्शन हो। क्योंकि 'विना पुत्र के मनुष्य की गति नहीं होती'। होते होते उसको वृद्धावस्था ने भी आकर घेर लिया। बुढ़ापे में तो और भी अधिक पुत्र की इच्छा हुआ करती है। मतलब यह कि उसको बुढ़ापे तक पुत्र के न होने का दुख रात दिन पीड़ित करता रहा।

सच है, मनुष्य के करने धरने से कुछ नहीं होता। जो प्रारब्ध में है वही समय पाकर मिलता है। यह भी ठीक है कि केवल भाग्य के भरोसे पर ही मनुष्य को नहीं रहना चाहिए। किन्तु उपाय भी करना चाहिए। उपाय करने पर भाग्य भी अपना ज़ोर लगाता है। यदि उपाय नहीं किया जाता तो भाग्य भी किसी किसी अवसर पर दबा रहता है। मतलब यह कि सिन्धुल राजा पुत्रप्राप्ति की चिन्ता में सदा रहता ही था। अन्त में राजा के भाग्य ने पलटा खाया। बुढ़ापे में उसे पुत्र-लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुत्र-जन्म सुन कर राजा को उस समय जो सुख मिला होगा वह लिखने में नहीं आ सकता। जिसकी चिन्ता में सारी उम्र बीत जावे, तिस पर भी लड़के के लिए, और बुढ़ापे में उसकी प्राप्ति हो तो इस सुख का अनुभव उसी को हो सकता है, जिसको कि यह सुख मिला करता है। अभिप्राय यह कि पुत्र का जन्म सुन कर राजा को अभूतपूर्व सुख मिला।

राजपुत्र का जन्म सुन कर प्रजा को भी बड़ा सुख हुआ। प्रजा ने जहाँ तहाँ बड़े बड़े उत्सव किये। राजा के अच्छे बर्त्ताव से प्रजा सन्तुष्ट तो थी ही। फिर भला उसको

राजकुमार का जन्म सुन कर अत्यन्त आनन्द क्यों न होता। उसने उसी तरह आनन्द मनाया जिस तरह राजघराने में मनाया गया था।

राजा ने पुत्रजन्म की ख़ुशी में बड़े बड़े दान-पुण्य किये। जो कोई दरवाज़े पर उस समय आया उसी को यथेच्छ धनादि पदार्थ दे कर सन्तुष्ट किया। जो जिसके योग्य था उसको वही चीज़ें दी गईं। वे लोग बड़े सुखी हुए और बड़े आनन्द के साथ पुत्र को आशीर्वाद देते हुए उसकी दीर्घायु के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करने लगे। सबने यही चाहा कि राजकुमार की बड़ी उम्र हो। यह ऐश्वर्यशाली हो और संसार में बहुत दिन तक जी कर राजकार्य करे।

पुत्र जन्म होने पर एक दो दिन के बाद राजा ने अपने राज्य के ज्योतिषियों को बुलवा कर कहा कि आप लोग मेरे पुत्र का जन्मपत्र तैयार कीजिए। उन्होंने आज्ञानुसार पुत्र की जन्मलग्न देख कर और गणित लगा कर जन्मपत्र तैयार किया। जब जन्मपत्र तैयार हो चुका तब राजा से ज्योतिषियों ने कहा कि राजन्! गणित से हमको मालूम हुआ है कि राजकुमार की उम्र अधिक होगी। जब यह बड़ा होगा तब यह महायशस्वी होगा। इसकी संसार में बड़ी प्रतिष्ठा होगी। इसके राज्य में कोई भी मनुष्य बिना पढ़ा लिखा न रहेगा, सब लोग पढ़ने लिखने में उद्योग करेंगे। इसकी प्रजा भी बड़ी बुद्धिमती होगी। इसके राज्य में विद्या का और कला-कौशल का बड़ा प्रचार होगा। सब लोग विद्वान् और तत्त्वार्थ जानने वाले होंगे। यह चक्रवर्ती राजा

होगा। लोग इसको महाराज कहेंगे और यह बड़े सुख से राज्य करेगा।

ये सब बातें होते हुए भी गणित से मालूम होता है कि बालकपन में एक दुख इसको भोगना पड़ेगा। वह दुख बहुत बड़ा न होगा। वह ज़ाहिरा तो बड़ा दुख मालूम होगा पर उसका परिणाम बुरा न होगा। उस दुख को भोगने में बहुत दिन न लगेंगे। थोड़े ही दिनों में उस दुख के बाद यह सुख से रहेगा और अच्छी तरह राज-कार्य करेगा। मनुष्य को सुख-दुःख कर्मानुसार हुआ करता है, इसलिए इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। आप इसका विशेष दुःख न मानें। जब कि दुःख-सुख का होना कर्मानुसार है तब उसको मेट ही कौन सकता है। इस लिए आपको किसी प्रकार का रंज नहीं करना चाहिए।

राशि के अनुसार इसका नाम भकारादि होता है। हमारी राय में आप इसका नाम भोज रक्खें तो अच्छा हो। यह सब जन्मपत्र का हाल कह कर ज्योतिषी लोग चुप हो गये। अन्त में राजकुमार का नाम भोज ही रक्खा गया।

राजा बिल्कुल समझदार था। उसने विचार किया कि जो होनहार है वह अवश्य होता है। भावी को कोई भी दूर नहीं कर सकता। ऐसा कोई भी उपाय नहीं है जो भावी को दूर कर सके। इसलिए राजा ने अपने मन में धैर्य धारण किया। सब ज्योतिषियों को, उनकी योग्यतानुसार दक्षिणा दे विदा किया।

राजकुमार भोज के दुःख का हाल ज्योतिषियों ने जो राजा को बतलाया था उसकी उसे रात दिन फ़िक्र रहती ही थी। ईश्वर की कृपा से धीरे धीरे भोज को पाँच वर्ष बीत गये। उसको किसी तरह का दुख न हुआ। जब राजा ने देखा कि अब तो राजकुमार ५ वर्ष का हो गया और इसको किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं हुई तब उसके मन को कुछ कुछ सन्तोष हुआ। अब धीरे धीरे राजा को बुढ़ापा घेरता गया। उम्र अधिक हो ही गई थी और चिन्ता भी अधिक करनी पड़ी। इसलिए राजा के मन में विचार पैदा हुआ कि सांसारिक कार्यों को छोड़ कर कुछ दिन परमात्मा का भी भजन करना चाहिए। परमात्मा का भजन किये बिना मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। इस तरह संसार की ओर से बिल्कुल उदासीनता हो गई। धीरे धीरे सांसारिक कार्यों को छोड़ देने का उसने पक्का विचार कर लिया।

पुराने ज़माने में हमारे आर्यावर्त्त देश की चाल थी कि चाहे राजा हो या रङ्क सभी, वृद्धावस्था आते ही, अपने अपने घर का कारोबार छोड़ कर वन को चले जाते थे। वे वहाँ जाकर ईश्वर का भजन करते थे और घर का सब प्रबन्ध पुत्रादि किया करते थे। तदनुसार राजा सिन्धुल ने भी वृद्धावस्था होने पर, वन में जाकर परमेश्वर का भजन करने का विचार किया।

तीसरा परिच्छेद

मुञ्ज को राजगद्दी



अब राजा सिन्धुल ने तो अपने मन में पूरा वैराग्य कर लिया। उन्होंने राज्यभार दूसरे मनुष्य को देना सर्वथा निश्चित कर लिया। राजा सिंधुल के एक भाई भी था। उसका नाम, मुञ्ज था। जब राजा ने अपने मन में, वन में जाकर तपस्या करने का पक्का विचार कर लिया तब अपने मुख्य मुख्य मन्त्रियों को बुलवाया। राजा ने मन्त्रियों से कहा कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अब मेरे ऊपर राज-भार न रहे तो अच्छा है। अब मेरी इच्छा है कि मैं वन में रह कर कुछ दिन तप करूँ, जिससे कि मेरा परलोक सुधरे। आप लोग बतलाइए कि अब मैं क्या करूँ? राज-कार्य कौन कर सकता है? मेरा छोटा भाई मुञ्ज बड़ा बली है। और मेरा लड़का भोज निपट बालक है। भाई मुञ्ज राज-काज सँभालने के योग्य है। उसमें इतनी शक्ति है कि वह राज को चला सके। यदि मैं मुञ्ज को राज्य न देकर अपने लड़के को राजा बनाऊँ तो एक तो यह डर है कि संसार में लोग निन्दा करेंगे

कि भाई को समर्थ होते हुए छोड़ कर राजा ने असमर्थ लड़के को राजा बनाया। दूसरा यह भी डर है कि मुञ्ज राज्य के लोभ से जहर दे कर कहीं लड़के को मरवा न डाले। यदि दैवगति से ऐसा हो गया, यह अनर्थ मुञ्ज से बन पड़ा तो इस राज्य का भोज को देना व्यर्थ होगा और वंश का नाश भी हो जावेगा। क्योंकि नीतिकारों ने कहा है किः—

"लोभ पाप की जड़ है। लोभ से ही पाप की उत्पत्ति होती है। लोभ ही वैर और क्रोध आदि अवगुणों को पैदा करने का मूल कारण है।

लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से द्रोह—ईर्ष्या—बढ़ता है। द्रोह करने से शास्त्र का जाननेवाला पण्डित भी नरक पाता है।

जब मनुष्य को लोभ घेर लेता है तब वह आगा-पीछा कुछ भी नहीं देखता। उसको धर्म-कर्म का कुछ भी ख़याल नहीं रहता, किन्तु वह माता, पिता, पुत्र, भाई, मित्र, स्वामी और सहोदर भाई तक को मारने के लिए तैयार हो जाता है, कभी कभी मार भी डालता है"।

यह सब विचारते हुए मैं उचित समझता हूँ, और यही ठीक मालूम होता है कि मैं मुञ्ज को राज्य देकर भोज को उसे सौंप दूँ। ऐसा करने से वंश का नाश भी न होगा और मुञ्ज बड़ा लोभी है वह भी ख़ुश रहेगा। जब भोज बड़ा हो जायगा और उसमें राज्य करने का सामर्थ्य हो जावेगा तब वह अपने आप ही उससे राज्य ले लेगा।

राजा के प्रधान मंत्री बुद्धिसागर ने यह सब हाल सुन

कर राजा से कहा कि आपका विचार ठीक है। ऐसा ही आपको करना चाहिए। ऐसा ही करने से राज्य का काम ठीक चल सकेगा, नहीं तो उत्पात होने का डर है।

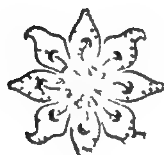
अब राजा ने अपने भाई मुञ्ज को बुलवाया। मुञ्ज के आने पर राजा ने कहा कि भाई मुञ्ज! राज्य का समस्त भार मैं तुमको सौंपता हूँ। इसको तुम अच्छी तरह से चलाओ। यह मैं अपना पुत्र भोज भी तुमको सौंपता हूँ। यह पुत्र बहुत छोटा है। इसकी रक्षा करनेवाले तुम्हीं हो। जब यह बडा हो जावे तब इसका राज्य तुम इसको दे देना और तुमको जो गाँव राज्य की ओर से मिले हुए हैं उनका कारोबार सम्भालना।

मुञ्ज ने राजा का कहना अच्छे प्रकार सुना और सब कुछ स्वीकृत किया। थोड़े दिन के बाद राजा सिन्धुल स्वर्ग को सिधार गये। राजा के मरने पर सारे राज्य में और राज भवन में शोक छा गया। सब लोगो ने राजा के मृतक शरीर का श्मशान-भूमि में अग्निसंस्कार किया और घर लौट आये। राजा के मरने बाद की जब सब और्ध्वदैहिक क्रियायें हो चुकी तब मन्त्रियों ने और राजघराने के लोगो ने बड़े ठाट-बाट के साथ मुञ्ज को राजसिंहासन पर बैठाया। मुञ्ज का राजतिलक हो गया।

राजा मुञ्ज बड़ा लोभी एवं स्वार्थी था। उसको अनायास ही राज्य मिल गया, इसलिए वह बडा प्रसन्न हुआ। उसने अपनी हाँ में हाँ मिलानेवाले नौकरों को ढूँढ़ना आरम्भ किया। जो पुराने नौकर थे और राज्य में प्रधान कार्यकर्त्ता

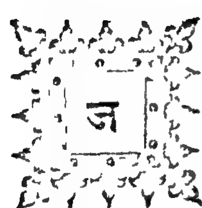
माने जाते थे उनमें से उसने अपने अनुकूल नौकरों को रहने दिया और बाक़ी को नौकरी से बर्ख़ास्त कर दिया। उनकी जगह नये नये नौकर नियत किये। जब पुराने नौकर निकाले गये और नये नये रक्खे गये तब पहले तो प्रजा में अच्छी तरह हल चल मची पीछे कुछ समय के बाद शान्ति हो गई।

नये नये राजकर्मचारी और अधिकारी अपनी इच्छानुसार प्रजा को सताने लगे। उनको जैसा अच्छा मालूम हुआ वैसा ही उन्होने प्रजा को दुख दिया। प्रजा की पुकार पर राजा ने कुछ भी ख़याल न किया। इस तरह कुछ समय बीता।



चौथा परिच्छेद

भोज का विद्याध्ययन और उसे मारने का उपाय



जब राजकुमार भोज की अवस्था ७ सात वर्ष की हुई तब राजा मुञ्ज ने उसको विद्या पढ़ाने का विचार किया। उसके लिए अलग एक पाठशाला नियत की गई और अच्छे अच्छे अध्यापक रक्खे गये। भोज का यज्ञोपवीत किया गया—और उसको विद्या पढ़ने की आज्ञा दी गई। भोज की उस समय उम्र कम थी तो भी वह विद्या-ध्ययन में बड़ा ध्यान रखता था। उसको जो कुछ पढ़ाया जाता था उसे वह अच्छी तरह समझ कर याद कर लेता था। उसका बर्त्ताव और चतुरता देख कर पढ़ानेवाले उसके आचरण की और बुद्धि की बड़ी प्रशंसा किया करते। वे लोग उससे बड़े प्रसन्न रहते। कैसा ही पाठ मुश्किल हो पर भोज अच्छी तरह समझ कर याद कर डालता था। इस तरह थोड़े ही दिनों में भोज ने विद्या, कला, मंत्र, तंत्र, आदि

विषयों में सर्वाङ्ग-पूर्णता प्राप्त करली, वह कई विद्याओं को अच्छी तरह जान गया।

एक दिन राजा मुन्ज उस पाठशाला को देखने गया जिसमें भोज पढ़ता था। उस वक्त भोज की उम्र बारह तेरह वर्ष की हो चुकी थी। मुन्ज ने भोज से बातचीत की। बातचीत से मालूम हुआ कि भोज तो हर एक बात में बड़ा होशियार हो गया है। उसके अपूर्व चातुर्य को देखने से मुन्ज ने अपने मन में विचार किया कि इस थोड़ी उम्र में तो इसकी यह दशा है, यह इतना चतुर हो गया है; जब यह बड़ी उम्र का होगा तब यह मुझसे अपना राज्य ज़रूर छीन लेगा। इसलिए इसका कुछ उपाय अभी से किया जावे तो ठीक है। लोकनिन्दा से डरना ठीक नहीं है। अगर मैं लोक-निन्दा का ख़्याल करूँगा तो ज़रूर पीछे पछताना पड़ेगा। मैं जो कुछ करना चाहूँगा वह अवश्य ठीक हो जावेगा। जब तक यह छोटा है तभी तक कुछ उपाय चल सकता है। बड़ी उम्र होने पर कोई उपाय काम न देगा।

इस तरह विचार करते करते कई दिन बीत गये। मुन्ज को न रात को नींद आती थी, न दिन को भूख लगती थी। वह यही सोचा करता था कि अब क्या उपाय करना चाहिए। इस शोकसागर में डूबा हुआ मुन्ज एक दिन अपनी सभा में बैठा हुआ था। राजपुरोहितों से तो वह राजकुमार भोज के जन्म का हाल पहले ही पूछ चुका था। उस दिन सभा में अकस्मात् एक ब्राह्मण आगया। वह बड़ा ज्योतिषी था। ज्योतिष के शास्त्र उसने अच्छी तरह पढ़े लिखे

थे। और विद्याओं में भी उसने अभ्यास किया था। वह बड़ा ही चतुर था। उस पण्डित ने आते ही कहा कि 'राजा के लिए कल्याण हो।' वह इस तरह आशीर्वाद देकर बैठ गया। बैठ कर पण्डित कहने लगा कि हे देव! संसार मुझको सर्वज्ञ—सब कुछ जानने वाला—कहा करता है, इसलिए आप भी मुझ से कुछ पूछिए। क्योंकि—विद्वान् का काम है कि अपनी विद्या का सदा दूसरों में प्रकाश करता रहे। जो विद्या गुरु में तथा पुस्तक में होती है उससे मूर्ख मनुष्य रोका जाता है—मूर्ख के पास विद्या जाती ही नहीं, उससे सदा दूर रहती है।

इस तरह पण्डित ने जब राजा से कहा तब राजा भी उसकी घमंड-भरी बातें सुन कर बोला कि मैंने जन्म से लेकर आज तक जो जो काम किये हों और जैसे जैसे आचरण किये हों उन सबको यदि आप कह सकते हों तो आप अवश्य सर्वज्ञ हैं। राजा की बातें सुन कर ब्राह्मण ने, जो जो काम राजा ने किये थे तथा जो कुछ उसके गुप्त भेद थे, सब कह सुनाये। फिर राजा उस ब्राह्मण की सर्वज्ञता जान कर बड़ा खुश हुआ। और उसके चरणों में गिर गया। फिर इन्द्रनील-मणि तथा पुष्पराज आदि मणियों से जड़े हुए अपने सिंहासन पर पण्डित को बैठाया और कहा कि—

"विद्या माता की नाईं मनुष्य की रक्षा करती है, पिता की तरह अच्छे अच्छे कामों में लगाती है, अपनी स्त्री की तरह थकावट दूर करके सुख देती है। चारों ओर कीर्ति फैलाती है और लक्ष्मी को बढ़ाती है। विद्या कल्पवृक्ष की

लता की तरह मनुष्य के कौन कौन काम सिद्ध नहीं करती ? अर्थात् संसार के जितने काम हैं वे सब विद्या से ही ठीक बनते हैं। बिना विद्या के कोई काम ठीक रूप से सिद्ध नहीं होता!"

ऊपर कही हुई विद्या की महिमा सुना कर राजा ने उस ब्राह्मण को अच्छी जाति के दस घोड़े दिये। उस राजा की सभा में बुद्धिसागर नामक मन्त्री बैठा हुआ था। उसने राजा से कहा कि देव ! इस पण्डित से भोज की जन्मपत्री के विषय में पूछिए। राजा मुञ्ज ने ब्राह्मण से कहा कि भोज की जन्मपत्री विचारिए। ब्राह्मण ने कहा कि भोज को मेरे पास बुलाइए। तब राजा ने सर्वाङ्गसुन्दर भोज को अपने एक शूर-वीर नौकर द्वारा पाठशाला से बुलवाया। भोज आया और अपने पिता की नाईं मुञ्ज को विनयपूर्वक प्रणाम करके खड़ा हो गया। भोज की छवि देख कर सभा के सब मनुष्य मोहित हो गये। उनको ऐसा मालूम होने लगा मानो भूमण्डल पर राजा इन्द्र आगया है और कामदेव ने तथा सौभाग्य ने मानो शरीर धारण किया है।

उस पण्डित ने भोज को देख कर राजा मुञ्ज से कहा कि हे राजन्! इस भोज का भाग्योदय कहने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। ब्रह्मा भी नहीं बतला सकते हैं तो भला मैं एक छोटा सा ब्राह्मण क्योंकर कह सकता हूँ ? फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ अवश्य कहूँगा। अब आप इस भोज को यहाँ से पाठशाला में भेज दीजिए। राजा की आज्ञा से भोज पाठशाला में भेज दिया। फिर ब्राह्मण ने कहा—

थे । और विद्याओं में भी उसने अभ्यास किया था । वह बड़ा ही चतुर था । उस पण्डित ने आते ही कहा कि 'राजा के लिए कल्याण हो ।' वह इस तरह आशीर्वाद देकर बैठ गया । बैठ कर पण्डित कहने लगा कि हे देव ! संसार मुझको सर्वज्ञ—सब कुछ जानने वाला—कहा करता है, इसलिए आप भी मुझ से कुछ पूछिए । क्योंकि—विद्वान् का काम है कि अपनी विद्या का सदा दूसरों में प्रकाश करता रहे । जो विद्या गुरु में तथा पुस्तक में होती है उससे मूर्ख मनुष्य रोका जाता है—मूर्ख के पास विद्या जाती ही नहीं, उससे सदा दूर रहती है ।

इस तरह पण्डित ने जब राजा से कहा तब राजा भी उसकी घमंड-भरी बातें सुन कर बोला कि मैंने जन्म से लेकर आज तक जो जो काम किये हों और जैसे जैसे आचरण किये हों उन सबको यदि आप कह सकते हों तो आप अवश्य सर्वज्ञ हैं । राजा की बातें सुन कर ब्राह्मण ने, जो जो काम राजा ने किये थे तथा जो कुछ उसके गुप्त भेद थे, सब कह सुनाये । फिर राजा उस ब्राह्मण की सर्वज्ञता जान कर बड़ा ख़ुश हुआ । और उसके चरणों में गिर गया । फिर इन्द्रनील-मणि तथा पुष्पराज आदि मणियों से जड़े हुए अपने सिंहासन पर पण्डित को बैठाया और कहा कि—

"विद्या माता की नाईं मनुष्य की रक्षा करती है, पिता की तरह अच्छे अच्छे कामों में लगाती है, अपनी स्त्री की तरह थकावट दूर करके सुख देती है । चारों ओर कीर्ति फैलाती है और लक्ष्मी को बढ़ाती है । विद्या कल्पवृक्ष की

लता की तरह मनुष्य के कौन कौन काम सिद्ध नहीं करती? अर्थात् संसार के जितने काम हैं वे सब विद्या से ही ठीक बनते हैं। बिना विद्या के कोई काम ठीक रूप से सिद्ध नहीं होता!"

ऊपर कही हुई विद्या की महिमा सुना कर राजा ने उस ब्राह्मण को अच्छी जाति के दस घोड़े दिये। उस राजा की सभा में बुद्धिसागर नामक मन्त्री बैठा हुआ था। उसने राजा से कहा कि देव! इस पण्डित से भोज की जन्मपत्री के विषय में पूछिए। राजा मुञ्ज ने ब्राह्मण से कहा कि भोज की जन्मपत्री विचारिए। ब्राह्मण ने कहा कि भोज को मेरे पास बुलाइए। तब राजा ने सर्वाङ्गसुन्दर भोज को अपने एक शूरवीर नौकर द्वारा पाठशाला से बुलवाया। भोज आया और अपने पिता की नाईं मुञ्ज को विनयपूर्वक प्रणाम करके खड़ा हो गया। भोज की छवि देख कर सभा के सब मनुष्य मोहित हो गये। उनको ऐसा मालूम होने लगा मानो भूमण्डल पर राजा इन्द्र आगया है और कामदेव ने तथा सौभाग्य ने मानो शरीर धारण किया है।

उस पण्डित ने भोज को देख कर राजा मुञ्ज से कहा कि हे राजन्! इस भोज का भाग्योदय कहने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। ब्रह्मा भी नहीं बतला सकते हैं तो भला मैं एक छोटा सा ब्राह्मण क्योंकर कह सकता हूँ? फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ अवश्य कहूँगा। अब आप इस भोज को यहां से पाठशाला में भेज दीजिए। राजा की आज्ञा से भोज पाठशाला को चला गया। फिर ब्राह्मण ने कहा—

"पचपन वर्ष, सात महीने, तथा तीन दिन तक यह राजकुमार भोज राजा बन कर बंगाल देश के सहित दक्षिण देश का राज्य करेगा ।"

इस तरह उस पण्डित की बातें सुनकर राजा मुञ्ज अपनी चतुराई से मुसकुराता रहा तथा अपने मुँह की कान्ति भी बनाये रहा; तो भी उसका मुँह सुस्त मालूम होने लगा । थोड़ी देर बाद ब्राह्मण को राजा ने विदा कर दिया । आधीरात को अपनी चारपाई पर पड़ा हुआ मुञ्ज विचारने लगा कि अगर राजलक्ष्मी भोज को मिल गई तो मैं जीता हुआ भी मरे के समान हो जाऊँगा । क्योंकि—

जब मनुष्य के पास धन नहीं रहता तब उसकी बुद्धि काम नहीं देती । धन की गर्मी न रहने पर मनुष्य कुछ का कुछ मालूम होने लगता है । उसकी इन्द्रियाँ उसके पास पूर्व-वत् रहती हैं पर जब धन नहीं रहता तब वे कुण्ठित हो जाती हैं, कुछ काम नहीं कर सकतीं । उस मनुष्य के शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाली सब बातें बनी रहती हैं पर सिर्फ़ धन न रहने से उस वक्त उसकी कोई भी बात काम नहीं करती । यह बड़ा आश्चर्य है । और—

जो कार्यसिद्धि में अपने शरीर तक की पर्वा नहीं करता, जो चतुर है, जो अपने मन में प्रत्येक कार्य का ठीक ठीक निश्चय कर लेता है और जो बुद्धि से विचार कर कामों को शुरू करता है उसके लिए संसार में कोई काम मुश्किल नहीं है । वह सब काम आसानी से कर सकता है ।

जो दूसरों के गुणों की कभी बुराई नहीं किया करता

तथा अपने सब काम उपाय विचार कर करता है उसकी आज्ञा का पालन मित्र और मंत्री आदि सब अच्छी तरह किया करते हैं ।

इसलिए आज मेरे लिए कोई काम मुश्किल नही है। मै सब काम अच्छी तरह कर सकता हूँ । क्योंकि—

जो सब कामों को चतुरता से करता है, और प्रत्येक काम को तर्क-वितर्क के साथ किया करता है तथा दूसरों की बुराई से जो सदा डरता रहता है उसको दूर से ही संपत्ति मिला करती है । और—

जो लेने के योग्य और देने के योग्य और करने योग्य काम हैं उनको जल्दी ही कर डालना चाहिए: नहीं तो उनके रस को काल पी जाता है—अधिक वक्त हो जाने पर फिर वे काम ठीक ठीक नहीं होते ।

चतुर मनुष्य को चाहिए कि अपमान को आगे कर और मान को पीठ पीछे करके अपना काम बना लेवे। काम का बिगाड़ देना मूर्खता कहलाती है। वक्त पर काम ठीक हो जाना चाहिए। मान और अपमान का कुछ ख़याल न करना चाहिए।

बुद्धिमान् को चाहिए कि थोड़े से काम के लिए बहुत को (धनादि पदार्थों को) बरबाद न कर दे। बुद्धिमत्ता यही है कि थोड़े काम से बहुत काम बना लेवे ।

जो पैदा होते ही शत्रु या बीमारी को शान्त नहीं कर देता वह बड़ा मजबूत होने पर भी उस शत्रु या बीमारी से मारा जाता है ।

जो अपनी रक्षा बुद्धि द्वारा कर लेता है उसका शत्रु कुछ नहीं कर सकते । जिस तरह जो अनुष्य हाथ में छतरी लिये हुए है उसको जल की धारा नहीं भिगो सकती । और—

जिनसे कुछ नतीजा न निकले, जो बड़ी मुश्किल से बन सकें, जिन में नफ़ा-नुक़सान बराबर हों और जिनके तैयार करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ें ऐसे कामों को पण्डित—चतुर—मनुष्य आरम्भ ही नहीं करते ।

इस तरह सोच विचार करते हुए उस मुञ्ज राजा ने दिन के तीसरे पहर अकेले ही ने सलाह की और अपने एक सेवक दूत को वंगदेश के महाबली राजा वत्सराज को बुलाने के वास्ते भेजा । उस दूत ने जाकर राजा वत्सराज से कहा कि आपको राजा मुञ्ज बुलाते हैं । यह सुन कर वह राजा मय अपने कुटुम्बी मनुष्यों के रथ पर सवार हो कर आया । वह आकर राजा को प्रणाम करके बैठ गया । राजा मुञ्ज ने उसी वक्त अपनी कचहरी बरख़ास्त कर दी और राजा वत्स-राज से बातचीत करने लगा । उसने वत्सराज से कहा—

राजा जब अपने नौकर से ख़ुश हो जाता है तब सिर्फ़ उसका सत्कार किया करता है, और सत्कार पाया हुआ नौकर उस राजा का अपने प्राणों तक से उपकार किया करता है । अब तुम आज रात को भोज को भुवनेश्वरी वन में ले जाना और वहाँ पर इसको मार कर इसका सिर ज़नाने महल में ले आना । यह सुन वत्सराज खड़ा हो गया और राजा से प्रणाम करके कहने लगा—

हे राजन् ! मैंने आपकी आज्ञा तो स्वीकार कर ली ।

आप मुझ पर प्रेम किया करते हैं इसलिए मैं कुछ कहना चाहता हूँ। कहने में शायद अपराध हो जावे तो क्षमा कीजिएगा। बात यह है कि—भोज के पास न तो धनदौलत ही है, न सेना ही है और न उसका बलवान कुटुम्ब ही है। वह केवल अत्यन्त गरीब की तरह रहता है। हे प्रभो! भोज में किसी तरह का सामर्थ्य नहीं है फिर वह मारने के योग्य क्यों ठहराया गया? वह सिर्फ़ अपना पेट ही भर लिया करता है। वह सदा आपके चरणों में आसक्त रहता है। हे राजन्! इन कारणों से मैं भोज के मार डालने में कोई विशेष कारण नहीं समझता! इतना कह कर वत्सराज चुप हो गया। तब राजा ने प्रातःकाल ज्योतिषी से सुना हुआ सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर उससे वत्सराज हँसता हुआ कहने लगा—

रामचन्द्रजी तीनों लोकों के स्वामी हुए हैं और वशिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र थे। उन्होंने भी राज्यतिलक के लिए मुहूर्त्त का निश्चय किया था। पर हुआ क्या कि उस मुहूर्त्त ने रामचन्द्रजी का राज्यतिलक न होने दिया किन्तु उनको वन जाना पड़ा; सीता का हरण हुआ और वशिष्ठ का वचन झूठा हो गया। हे राजन्! न जानने के बराबर कुछ जानने वाला और अपना पेट भरने वाला यह ब्राह्मण कौन है? जिसके कहने पर आप अत्यन्त ख़ूबसूरत सुकुमार बालक को मरवाना चाहते हैं? यह ब्राह्मण मुझे मूर्ख प्रतीत होता है। आप इसके कहने में आकर इतना अनर्थ क्यों करना चाहते हैं?

'इस काम के करने से क्या नतीजा निकलेगा और न करने से क्या फल होगा' यह अच्छी तरह सोच विचार

कर बुद्धिमान् मनुष्य उस काम को करे या न करे। चतुर मनुष्य काम का फल विचार कर काम शुरू किया करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि यह काम करने योग्य है या नहीं है, इसका क्या फल होगा, यह अच्छी तरह से सोच लेवे। जो काम विना विचारे जल्दी से किये जाते हैं उनका नतीजा अच्छा नहीं होता। वे सदा काँटे के समान हृदय में चुभने वाले और दुख देने वाले होते हैं। आप पहले अच्छी तरह विचार लीजिए कि इस अनर्थ के करने से क्या फल होगा। मेरी राय में आपको पीछे पछताना पड़ेगा। और देखिए—

जिसके साथ बैठना-उठना, खाना-पीना, हँसना-खेलना, बोलना होता है और जिसका बहुत विश्वास किया जाता है उसके साथ बुरे मनुष्य का भी—मूर्ख का भी—मरण पर्यन्त मेल बना रहता है, उसके साथ कभी बिगाड़ नहीं होता।

दूसरी बात यह कि इस भोज के मरवा देने से बुड्ढे सिंधुल राजा के जो बड़े प्रेमपात्र शूरवीर हैं और इस समय तुम्हारी आज्ञा में चलते हैं वे सब तुम्हारे नगर को इस तरह बरबाद कर देंगे जिस तरह बड़े बादलों की प्रबल घटा बरस कर नगर को डुबो कर नष्ट कर देती है। यद्यपि बहुत दिन से तुम्हारी जड़ मज़बूत हो रही है तो भी शहर के रहने वाले विशेष कर भोज को ही राजा मान रहे हैं, तुम को नहीं।

यह भी ठीक ही है कि मनुष्य कार्य तो अच्छे करता हो पर बुरी नीति को काम में लाता हो तो वह कुनीति लक्ष्मी की

शोभा को नष्ट कर देती है। जिस तरह हवा दिये की ज्योति को तेल से अच्छी तरह भीगी होने पर भी बुझा देती है।

इन नीति के वचनों से मालूम होता है कि हे राजन्! पुत्र का मारना किसी तरह ठीक नहीं है। वत्सराज की बातें सुन कर राजा मुञ्ज को बड़ा ग़ुस्सा आया और बोला कि राजा तो तूही है, तू सेवक नहीं है। क्या तू ने नीति का वचन नहीं सुना कि—

स्वामी की कही हुई बात को जो पूरा नहीं करता वह नौकर सब नौकरों से नीच समझा जाता है। उस नौकर का जीना भी इस तरह व्यर्थ है जिस तरह बकरी की गर्दन में थन व्यर्थ होते हैं।

मुञ्ज ने जब इस तरह कहा तब वत्सराज ने अपने मन में विचार किया कि जैसा समय हो वैसा ही विचार कर कार्य करना चाहिए। इस तरह समझ कर वह चुप हो रहा। इसके बाद जब सूर्य छिपने लगा तब वह वत्सराज ग़ुस्से में भरा हुआ ऊँचे महल से उतरा। उसको यमराज की तरह आता हुआ देख कर, इकट्ठे हुए सब सभासद् डर गये और अनेक बहाने करके अपने अपने घर को चले गये। फिर वत्स-राज ने अपने घर की रक्षा के वास्ते बहुत से नौकर भेज दिये। और अपना रथ ले जाकर भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर के सामने खड़ा कर दिया, फिर एक नौकर से कहा कि तुम उस पण्डित को बुला लाओ जो भोज को पढ़ाया करता है। नौकर ने जाकर पण्डित से कहा कि तुमको वत्सराज बुलाता है। उस नौकर ने पण्डित का हाथ पकड़ लिया और ले चला। इस प्रकार अक्स्मा-

नक बुलाने से पण्डित ने मन में सोचा कि क्या वज्र आ पड़ा! क्या यह भूत चिपट गया या किसी ग्रह ने ग्रस्त कर लिया है। जब वत्सराज के पास पहुँचा तब बुद्धिमान् वत्सराज ने उसको प्रणाम किया और कहा कि पण्डितजी! बैठिए। फिर कहा कि राजा के पुत्र जयन्त को पाठशाला से बुलवाइए। जयन्त कुमार आया और उससे कुछ पठन-पाठन पूछ कर उसको वापस कर दिया। फिर वत्सराज ने पण्डित से कहा कि अब भोज को बुलवाइए। भोज पहले से ही सब हाल जानता था। वह ग़ुस्से में भर कर लाल आँखें किये हुए आया और बोला। आश्चर्य की बात है! अरे पापी! मैं प्रधान राजकुमार हूँ। अकेला मुझको राजभवन से बाहर ले जाने की तेरी क्या शक्ति है? इस तरह कह कर भोज ने अपने बायें पैर की खड़ाऊँ उठा ली और ज़ोर से वत्सराज के सिर में मार दी। वत्सराज ने यह कर कि हम राजा की आज्ञा का पालन करने वाले हैं, झट भोज को उठा कर रथ में बैठा लिया और तलवार को म्यान से निकाल कर जल्दी से देवी के भवन को चल दिया। इस प्रकार भोज के पकड़ ले जाने पर लोग शोर मचा कर कहने लगे। अरे! यह क्या है! क्या है! इस तरह कहते हुए शूर-वीर योद्धा दौड़े हुए आये। जब उनको मालूम हुआ कि वत्सराज ने भोज को मारने के वास्ते पकड़ा है तब कोई हाथीख़ाने में, कोई घुड़साल में, घुसकर, जिसको जो मिला उसी को वह मारने लगा। फिर गली-कूचे में, राजभवन के दर्वाज़े पर चारों ओर बाजों के बजने का ऐसा शब्द हुआ कि आकाश गूँज उठा।

अब कोई तो पैनी तलवार से, कोई ज़हर खा कर, कोई भाला मार कर, कोई अग्नि में गिर कर, कोई ज़मीन पर पछाड़ खा कर, कोई जल में डूब कर, ब्राह्मण, स्त्री, राजपूत, राजसेवक और राजा तक अपने अपने प्राणों का घात करने लगे।

भोज की माता का नाम सावित्री था। उसने जब दासी से अपने लड़के का हाल सुना तब वह मुँह ढाप कर रो रो कहने लगी कि हा पुत्र! तुमको तुम्हारे चचा ने किस दशा को पहुँचाया। मैंने आज तक जो कुछ व्रत और नियम तुम्हारे वास्ते किये थे वे सब निष्फल हो गये। मुझे दसों दिशायें शून्य दीखती हैं। हे पुत्र! सर्वज्ञ देव ने सब ऐश्वर्य नष्ट कर दिया। हे पुत्र! जो यहाँ दासियों के सिर कटे हुए पड़े हैं इनको तो एक बार देखो। इस तरह कहती और विलाप करती हुई वह भोज की माता ज़मीन पर गिर पड़ी।

इसके बाद जिस तरह बहुत अग्नि जलने से धुआँ उठता है और अँधेरा छा जाता है, इसी तरह आकाश मलिन हो गया और मानों पाप के डर से पश्चिम दिशा में सूर्य छिप गया हो, इस तरह सूर्य के अस्त हो जाने पर वत्सराज महामाया के मकान पर पहुँच कर भोज से कहने लगा—हे कुमार! हे नौकरों के स्वामी भोज! जो ज्योतिःशास्त्र को अच्छी तरह जानने वाला है ऐसे एक ब्राह्मण ने राजा मुञ्ज से कहा कि अब राज्य का भोग भोज करेगा। यह सुन कर मुञ्ज ने तुमको मारने के वास्ते मुझे हुक्म दिया है। भोज ने कहा—

श्रीरामचन्द्रजी का वनवास होना, राजा बलि का बाँधा जाना, पाण्डवों का वन में रहना, यादवों का मारा जाना,

राजा नल का राज्य से अलग होना और दूसरे के घर रह कर रसोई का काम करना, और बली रावण का मारा जाना; इन सब घटनाओं को देखो। सब लोग काल के वश हो कर नष्ट हो जाते हैं, कोई नहीं बचता। और देखो—

चन्द्रमा—लक्ष्मी, कौस्तुभमणि और कल्पवृक्ष इनका सगा भाई है—और अमृतरूपी क्षीरसमुद्र का लड़का है। और विनयपूर्वक ख़ुशी से महादेवजी ने अपने मस्तक पर धारण किया है। इस तरह का बड़प्पन रखता हुआ चन्द्रमा अब भी दैव बल से क्षीणता का त्याग नहीं करता। उसकी कला हमेशा क्षीण हुआ करती है। इसलिए जो पत्थर की रेखा की सखी है—पत्थर पर जो लकीर खोदी जाती है वह मिटाये नहीं मिटती—ऐसे ही विधाता की गति है—जो होनहार है वह किसी के मिटाये नहीं मिटती। उसका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता।

भयानक भूमि पर विचरना, पर्वत पर चढ़ना, समुद्र में तैरना, क़ैद में रहना, गुफा में घुसना; यह सब विधाता की रचना है। इसको कौन पार कर सकता है, सब भोगना ही पड़ता है। इसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता।

जो अपनी इच्छा मात्र से जल को थल और थल को जल कर सकता है, जो धूल के कण को पर्वत, और सुमेरु पर्वत को रजकण बना सकता है, जो तिनकों को वज्र के समान और वज्र को तिनके के समान कर सकता है; जो आग को ठंडा और शीत को गर्म बना सकता है; ऐसे क्रीड़ा-कौतुक करनेवाले, अघटनघटनापटु भगवान् के लिए हमारा प्रणाम है।

फिर भोजराज ने बरगद के दो पत्ते लिये और उनका एक दोना बनाया। फिर अपनी जाँघ में छुरी लेकर छेद किया और उससे निकले हुए ख़ून की कुछ बूँदें उस दोने में डाल दीं। फिर एक तिनका ले कर एक पत्ते पर उस ख़ून से भोजराज ने एक श्लोक लिखा और वत्सराज से कहा—हे महाभाग! यह पत्र राजा मुञ्ज को दे देना। अब आप भी राजा की आज्ञा का पालन कीजिए—अर्थात् मेरा सिर काट कर राजा की आज्ञा पूरी करके विदा हूजिए। वहीं पर वत्सराज का छोटा भाई भी साथ था। उसने जब मरते समय भी भोज के मुँह की कान्ति ज्यों की त्यों देखी—उसके मुँह पर उस समय भी कुछ भी उदासी होती हुई न देखी—तब उसने कहाः—

एक धर्म ही ऐसा सच्चा मित्र है जो मरने के बाद भी साथ जाता है। और जितने परिवारी या रिश्तेदार या धन-दौलत जो कुछ भी है वह सब जिस समय इस शरीर से प्राणपखेरू उड़ता है उस समय साथ छोड़ कर यहीं बने रहते हैं, एक भी साथ नहीं जाता।

शरीर के नष्ट होने पर माता, स्त्री, पुत्र, मित्र, भाई, बन्धु आदि कोई भी मदद करने के वास्ते साथ नहीं देता, सिर्फ़ एक धर्म ही साथ जाता है।

इस दुनिया में आकर जो मनुष्य धर्म से विमुख रहता है—धर्म की परवा नहीं करता—वह चाहे जैसा बलवान् हो तब भी निर्बल है; चाहे जैसा धनी हो तब भी निर्धन है। और चाहे जैसा शास्त्र का जानने वाला हो अच्छा पढ़ा-लिखा हो

तब भी मूर्ख है। बलवान्, धनवान् और पण्डित होना तभी सार्थक होते हैं जब वह धर्मानुसार काम करने वाले हों। नहीं तो ऐसे बड़े बड़े अनर्थ करने वाले हो जाते हैं जो सर्वथा दुखदाई होते हैं।

जो मनुष्य इसी संसार में नरकरूपी बीमारी की दवा नहीं कर लेता, वह रोगी बन कर, जहाँ दवा वगैरः कुछ भी नहीं मिलती ऐसे नरक में जाकर क्या कर सकेगा। कुछ नहीं।

जो मनुष्य वृद्धावस्था को जानता है—जो जवानी उम्र में यह समझता है कि मैं बूढ़ा अवश्य हूँगा—जो मौत को भी जानता है कि मैं अवश्य मरूँगा और जो भय तथा रोग को भी समझता है वही पण्डित कहलाता है। तात्पर्य यह कि जो इन बातों को अच्छी तरह जान लेता है उससे बुरे काम नहीं हो सकते। ऐसा मनुष्य कहीं ठहरे, कहीं आराम करे, कहीं सोवे और चाहे जिसके साथ हँसे खेले। वह सदा खुशी रहेगा, और हमेशा उसको आराम मिलेगा। वह कभी दुखी नहीं हो सकता।

हे वत्सराज! तुम अपने समान जाति वालों को, अपने समान उम्रवालों को और अपने समान रूपवालों को देखो कि वे किस तरह मर कर नष्ट हो जाते हैं। क्या उनको देख कर भी आपको डर और दुख नहीं होता। मालूम होता है तुम्हारा हृदय वज्र के समान है।

वत्सराज ने जब अपने छोटे भाई के इन वचनों पर ख़याल किया तब उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और भोजराज को

प्रणाम करके कहने लगा कि मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। वह शाम का वक़्त था और अधिक अँधेरा हो गया था, इसलिए वत्सराज भोजराज को वहाँ से बिना ही मारे अपने घर वापस ले आया और उसको छिपा कर तैख़ाने में रक्खा और उसकी रक्षा की। फिर उसने बड़े होशियार चित्र बनाने वालों से भोज का नक़ली सिर बनवाया। उसके कानों में बढ़िया कुण्डल वैसे ही पड़े हुए थे, उसका मुँह वैसा ही चमक रहा था जैसा कि भोज का था और आँखें मीचे हुए था। राजा भोज का ही सा सिर जब बिलकुल तैयार हो गया तब वत्सराज उस सिर को लेकर राजभवन में गया और राजा मुञ्ज से प्रणाम करके कहने लगा कि हे राजन्! श्रीमान् ने जो हुक्म दिया था उसको पूरा करके मैं आया हूँ। राजा ने समझ लिया कि लड़का मारा गया। उसने वत्सराज से पूछा कि हे वत्सराज! यह तो बताओ कि जब भोज के तलवार मारी गई उस समय उसने कुछ कहा था या नहीं। उस समय वत्सराज ने उसी पत्र को दे दिया जो भोज ने एक पत्ते पर ख़ून से एक श्लोक लिख दिया था। राजा पत्र पा कर, अपनी स्त्री से दीपक मँगवा कर उस पत्ते पर लिखे हुए अक्षरों को बाँचने लगा। उसमें लिखा था कि:—

'मान्धाता च महीपति कृतयुगालंकारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते!
नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति॥

सत्ययुग में जो राजा मान्धाता बड़ा बुद्धिमान् और

धर्मात्मा हुआ है वह भी नहीं रहा—प्रकृति के नियमानुसार ऐसा बड़ा राजा भी मर गया—जिन्होंने समुद्र का पुल बाँधा और लड़ाई में अपनी बहादुरी से बली रावण को मार गिराया वह रामचन्द्रजी भी कहाँ हैं—वे भी मर गये—और भी बड़े बड़े प्रतापी राजा युधिष्ठिर आदि इस संसार में पैदा हो गये हैं वे भी स्वर्गलोक में पहुँच गये। ऐसे महा-पराक्रमी और बड़े शूरवीर धर्मात्मा राजाओं के भी साथ यह पृथिवी या पार्थिव पदार्थ कोई न गया, सब यहीं रह गये। हे मुञ्ज! अब मालूम होता है कि यह पृथिवी तुम्हारे मरने पर तुम्हारे साथ ज़रूर जावेगी!

राजा मुञ्ज ने जब इन वाक्यों को उस पत्र में लिखा पढ़ा और उनका मतलब समझा तब फ़ौरन खाट पर से ज़मीन पर गिर पड़ा। रानी पास ही खड़ी थी। उसने जब देखा कि राजा बेहोश हो गये हैं तब अपने डुपट्टे के एक किनारे से राजा के ऊपर हवा करने लगी। हवा से राजा को कुछ होश हुआ और कहा कि हे रानी! मैं पुत्रघाती हूँ, मैंने अपने योग्य लड़के को मरवा डाला है। अब तू मुझे मत छू। उस वक्त कुररी पक्षी की तरह विलाप करते हुए उसने द्वारपालों को बुलाया और उनको हुक्म दिया कि ब्राह्मणों को बुला लाओ। द्वारपाल फ़ौरन बहुत से ब्राह्मणों को बुला लाये। जब ब्राह्मण लोग आये तब राजा ने सबको दण्डवत् किया और कहा कि मैंने अपना पुत्र मार डाला है; आप लोग मुझे इसकी प्राय-श्चित्तविधि बतलाइए। उन्होंने कहा कि हे राजन्! इसका यही प्रायश्चित्त है कि आप फ़ौरन अग्नि में प्रवेश

करें। दूसरे प्रायश्चित्त से इस पाप से छुटकारा नहीं हो सकता।

इतनी बातें हो ही रही थीं कि वहाँ बुद्धिसागर आ पहुँचा और उसने कहा कि हे राजन्! जैसे तुम अधम राजा हो वैसेही तुम्हारा मन्त्री वत्सराज भी नीच है। क्योंकि जिस समय राजा सिन्धुल राज्य से अलग हुआ तब अपना सारा राज्य तुमको दे दिया और भोज को तुम्हारी गोद में दिया कि तुम उसकी रक्षा करना। पर तुमने भोज के चचा होने पर भी उसको मरवा डाला! सच है—

जिन मनुष्यों का स्वभाव बुरा है, जो दुष्ट-प्रकृति होते हैं वे थोड़े दिन रहने वाली जवानी के ग़रूर में भर कर ऐसे अनर्थ कर डालते हैं कि जिन से उनका जन्म ही व्यर्थ हो जाता है—वे ऐसी बुराइयाँ कर बैठते हैं कि दूसरों में मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह जाते।

अच्छे मनुष्य ऐसे ऐसे स्वभाव के होते हैं कि अपने सिर से तिनका उतारने वाले के अहसान को करोड़ मोहर देने के बराबर मानते हैं। और, बुरे मनुष्यों का यह स्वभाव होता है कि कोई मनुष्य प्राण त्याग करके भी—नाना प्रकार के दुःख सह कर भी—उनका उपकार करे तो उसको भी वैरी सा ही समझा करते हैं।

जो कोई अपने साथ भलाई करे या कोई बुराई करे तो उसको याद रखना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते उनका हृदय पत्थर के समान सख़्त समझना चाहिए। ऐसों का जीना वृथा ही है।

जिस तरह छोटे छोटे अंकुरों की बड़े यत्न से रक्षा करने पर वे समय पाकर—अपने वक़्त पर—फल देते हैं, इसी तरह जिस मनुष्य की अच्छी तरह रक्षा की जाती है वह कभी न कभी अवश्य फल देनेवाला होता है।

सोना, अन्न, रत्न और भी बहुत तरह के धन तथा संसार की जितनी चीज़ें हैं वे सब प्रजा से ही राजा को मिला करती हैं।

अगर राजा धर्मात्मा होवे तो प्रजा ज़रूर धर्मात्मा होगी। अगर राजा पापी हो तो प्रजा भी पापी वन जाती है। प्रजा राजा के अनुसार हुआ करती है, जैसा राजा होता है प्रजा स्वयमेव वैसी ही बन जाती है।

निदान राजा ने उसी रात को अग्नि में प्रवेश करना निश्चित किया। तब राजा के साथ के वैठने-उठने वाले, राजा तथा शहर के रहने वाले वहुत से मनुष्य राजा मुंज से मिलने आये और उस समय सव जगह यह ख़बर फैल गई कि राजा ने पुत्र मरवा डाला है। वह उस पाप से डर रहा है और अग्नि में प्रवेश करना चाहता है। इसके वाद वुद्धि-सागर मन्त्री ने द्वारपालों को वुला कर कह दिया कि राजा के महल में कोई मनुष्य न आने पावे। और वह ख़ुद अकेला ही राजा के महल में जाकर वैठ गया। फिर राजा के मरने की वात सुन कर वत्सराज सभा के स्थान में आया और वुद्धिसागर को प्रणाम किया। फिर धीरे धीरे कहने लगा, हे भाई! मैंने भोजराज को बचा रक्खा है, उसको मारा नहीं

है। यह सुन कर बुद्धिसागर ने वत्सराज के कान में धीरे से कुछ कह दिया और वह वहाँ से चला गया।

इसके बाद थोड़ी ही देर में एक मनुष्य आया जो हाथ में सुन्दर हाथी दाँत की छड़ी लिये हुए था और सिर पर बालों की जटा बनाये हुए था। उसके शरीर में कपूर की सी धूल सहित सफेद भस्म लगी हुई थी, उसके सारे शरीर की ऐसी शोभा बन रही थी मानो मूर्त्ति धारण करके कामदेव आ गया है। वह स्फटिक मणि के कुण्डल पहने हुए, रेशमी कपड़े की कौपीन धारण किये हुए और कापालिक वेश में सभा में आकर इस तरह खड़ा हो गया मानो मूर्त्ति धारण कर महादेवजी आये हैं। उसको देखते ही बुद्धिसागर ने पूछा—हे योगीन्द्र कापालिक! तुम कहाँ से आये हो, तुम कहाँ रहते हो? तुम में कुछ चमत्कारी कला विशेष है? क्या कोई इसमें औषध बूटी है? योगी ने उत्तर दिया:—

शिव! ऐसे सार वस्तु की खोज करने वाले योगियों का देश देश में घर है। प्रत्येक घर में भिक्षा का अन्न है। प्रत्येक तालाब और नदी में जल है। उनको ये सारी चीजें बड़ी आसानी से मिल जाती हैं।

योगियों के लिए गाँव गाँव में बड़ी मनोरम कुटियाँ बनी हुई हैं। पर्वत के प्रत्येक झरने में उनके लिए जल है। भिक्षा माँगने पर आसानी से अन्न मिल जाता है। योगियों को ऐश्वर्य मिलने से क्या प्रयोजन?

हे भाई! सुनो, हम योगी हैं। हमारा घर देश नहीं है। हम सम्पूर्ण भूमण्डल पर घूमा करते हैं। हम सदा [illegible]

उपदेश का पालन करते हैं। हम सम्पूर्ण भूमण्डल को इस तरह सदा प्रत्यक्ष देखा करते हैं जिस तरह कोई मनुष्य आँवले को हाथ में लेकर देखे। हे भाई! साँप से काटे हुए को, ज़हर से घबराये हुए को, रोग से सताये हुए को, शस्त्र से कटे हुए सिर वाले को; इन सब तरह के दुःखी मनुष्यों को हम आरोग्य कर देते हैं, दुख से छुड़ा देते हैं।

राजा मुञ्ज भी दीवार की ओट में बैठा हुआ उस योगिराज का सब कथन सुन रहा था। जब योगी कह चुका तब राजा निकल कर बाहर आया और योगी को प्रणाम किया। फिर कहने लगा कि हे योगीन्द्र! आप शिव-समान हैं। आप परोपकार करने में बड़े चतुर हैं। मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने अपना एक लड़का मरवा डाला है। उस पुत्र को जिला कर आप मेरी रक्षा कीजिए। तब योगी ने कहा कि हे राजन्! डरो मत। तुम्हारा पुत्र नहीं मरेगा। वह महादेवजी की कृपा से घर पर आ जावेगा। अब तुम एक काम करो कि बुद्धिसागर के साथ श्मशान भूमि (मुर्दघट) में हवन करने की सामग्री पहुँचा दो। यह कहने के बाद योगी ने जो जो बातें राजा को बतलाईं वे सब राजा ने कीं। सब काम हो चुकने पर राजा ने बुद्धिसागर को श्मशान भूमि में भेजा। जब रात हो गई तब छिपे हुए भोज को भी नदी पर गुप्त रूप से पहुँचा दिया गया और यह प्रसिद्ध किया गया कि योगी ने भोज को जिला दिया। फिर भोज हाथी पर चढ़ कर पुरवासी तथा मन्त्री लोगों के सहित राजभवन में आया। उस समय भाट लोगों ने स्तुति की धुन लगा दी और मृदंग आदि बाजों

की आवाज़ से कान बहरे हो गये। जब राजा मुञ्ज भोज से मिला तब रोने लगा। भोज ने राजा को रोने से रोका और उसकी बड़ी तारीफ़ की।

कुछ दिन के बाद राजा मुञ्ज ने बड़ी ख़ुशी के साथ भोज को अपने राजसिंहासन पर बैठा कर, छत्र और चँवर से विभूषित कर उसको राज्य दे दिया। भोज को तो राज-तिलक करके राजा बना दिया और अपने सब लड़कों को एक एक गाँव दे दिया। मुञ्ज जयन्त लड़के से अधिक प्रेम करता था, उसको राजा भोज के सिपुर्द कर दिया।

कुछ दिन के बाद मुञ्ज ने विचार किया कि परलोक के लिए भी कुछ करना चाहिए, इसीलिए उसने यही निश्चय किया कि शास्त्रों में लिखा है कि जब लड़के घर का काम-काज सँभालने योग्य हो जावें तब वृद्ध मनुष्य को चाहिए कि वह वानप्रस्थ आश्रम में रहे। यही विचार कर मुञ्ज अपनी पटरानियों को साथ लेकर तपोवन को चला गया। वहाँ उसने जाकर ख़ूब तपस्या की। राजा भोज भी देवता और ब्राह्मणों की कृपा से अच्छी तरह से राज्य करने लगा।





पाँचवाँ परिच्छेद

गोविन्द ब्राह्मण



अब राजा मुञ्ज तो तपोवन में तपस्या करने के लिए चला गया और राजा भोज बुद्धिसागर नामक मुख्य मन्त्री को अपने पास रख कर अच्छी तरह राज्य करने लगा। जब राज्य करते बहुत समय बीत गया तब एक दिन राजा भोज अपने बगीचे को जाने लगे। उन्होंने जाते हुए रास्ते में सामने धारानगर का रहने वाला एक ब्राह्मण देखा। उस ब्राह्मण ने राजा को देखते ही आँखें मीच लीं और आगे बढ़ा। जब बिलकुल दोनों पास आ गये और आमने सामने हुए तब राजा ने ब्राह्मण से पूछा कि हे ब्राह्मण! तुमने मुझको देखा और स्वस्ति—आशीर्वाद—क्यों नहीं दिया? तुमने मुझको देखते ही आँखें मीच लीं इसका कारण क्या है। ब्राह्मण ने कहा कि हे देव! आप वैष्णव हैं, आप ब्राह्मणों को कुछ हानि नहीं पहुँचायेंगे; इसलिए आप से मुझे कुछ डर नहीं है। पर आप कभी किसी को कुछ दान नहीं देते;

यह आपके लिए अच्छा नहीं है, इससे आपको कोई उदार नहीं कह सकता। आपको यदि आशीर्वाद ही दिया जाता तो क्या? नीतिकारों ने बतलाया है कि यदि कोई सबेरे कंजूस का मुँह देख लेवे तो यदि किसी अन्य पुरुष से भी लाभ पहुँ-चता हो तो उसकी भी हानि हो जाती है। इसी सबब से मैंने आपको देख कर आँखें मीच लीं थीं। नीति में लिखा है कि—

जिसकी प्रसन्नता भी निष्फल रहे—अगर कोई राजा किसी पर ख़ुश हो जावे और वह जिस पर ख़ुश हुआ है उसको कोई फ़ायदा न पहुँचावे—और जिसका क्रोध भी व्यर्थ जावे उस राजा को प्रजा अच्छी नज़र से नहीं देखा करती। और अप्रगल्भ पुरुष की विद्या, कंजूस मनुष्य का धन और डरपोक मनुष्य की भुजाओं का बल ये तीन चीज़ें संसार में व्यर्थ मानी जाती हैं।

हे राजन्! मेरे वृद्ध पिता काशी को जा रहे थे। उस समय मैंने उनसे पूछा कि पिताजी! मुझको क्या करना चाहिए? तब पिताजी ने बतलाया कि—

हे पुत्र! अगर तुम्हारे हृदय में अच्छी नीति का बीज बोया गया है तो तुम ऐसे राजा की कभी सेवा न करना जिसको मन्त्रियों ने अपने क़ाबू में कर रक्खा हो और जो स्त्रियों के वश में रहता हो।

सब पापों में दो पाप बहुत बड़े हैं—एक तो ऐसा राजा जिसके पास बुरे मन्त्री रहते हों, दूसरे उस राजा की सेवा करना।

जहाँ मूर्ख राजा, गुणवान् पुरुषों से पराङ्मुख मन्त्री, और जहाँ बुरे मनुष्यों का ज़ोर होता है वहाँ अच्छे मनुष्यों को कभी मौक़ा नहीं मिल सकता ।

जो राजा योग्य हो और गुणवान् हो, उसके पास चाहे धन-दौलत न भी हो तो भी उसके आश्रय में रहना चाहिए। क्योंकि किसी समय उससे ज़रूर फ़ायदा होगा ।

हे देव ! जो दान नहीं करते वे उदार नहीं कहलाते—उनको कोई अच्छा नहीं बतलाता। पहले समय में राजा कर्ण, दधीचि, शिवि और विक्रम आदि राजा हो गये हैं। वे इस समय परलोक में हैं—इस संसार में नहीं हैं। पर उन्होंने ऐसे दानादि सत्कर्म किये थे जिससे आज तक सारे संसार में उनका नाम मौजूद है—मानों वे आज तक यहाँ रहते हैं। क्या उनके समान और कोई राजा है ?

जो अवश्य नष्ट होने वाला शरीर है उसकी रक्षा करने से क्या लाभ है। ऐसे यश की रक्षा करनी चाहिए जिसका कभी नाश नहीं होता। मनुष्य मर जाता है, उसका शरीर नष्ट हो जाता है तो भी उसका यशरूपी शरीर जीता रहता है।

पण्डित हो या मूर्ख, बलवान् हो या दुर्बल, धनी हो या ग़रीब, सबके लिए मृत्यु बराबर है। मौत जब आती है तब वह यह ख़याल नहीं करती कि यह धनी है या बलवान्, इसको छोड़ देना चाहिए। नहीं, वह सबके लिए एक सी है, उसके लिए धनी और ग़रीब सब एक से हैं ।

तुम्हारी उम्र चली जा रही है, एक क्षण भी नहीं ठहरती। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने अनित्य शरीर के

लिए एक कीर्त्ति का संचय करे—ऐसे काम करे जिस से संसार में मरने के वाद भी नाम वना रहे ।

जो मनुष्य ज्ञान, विक्रम—वहादुरी,—कला, कुल-लज्जा, दान, और भोग इनसे रहित हैं—जिनमें ये वातें नहीं हैं—क्या ऐसे मनुष्यों का जीवन भी अच्छे मनुष्यों के जीवन में गिना जा सकता है ? कभी नहीं । ऐसों का जीवन व्यर्थ है ।

ऊपर कही हुई ब्राह्मण की सव वातें राजा भोज ने अच्छी तरह सुनीं । उसको इन वाक्यों से ऐसा आनन्द हुआ मानो अमृत से भरे हुए तालाव में उसने ग़ोता लगाया हो । वह परब्रह्म परमात्मा में लीन हुआ साधारण मनुष्य की तरह अपनी आँखों से आनन्द के आँसू टपकाने लगा और वोला कि विप्रवर ! सुनो—

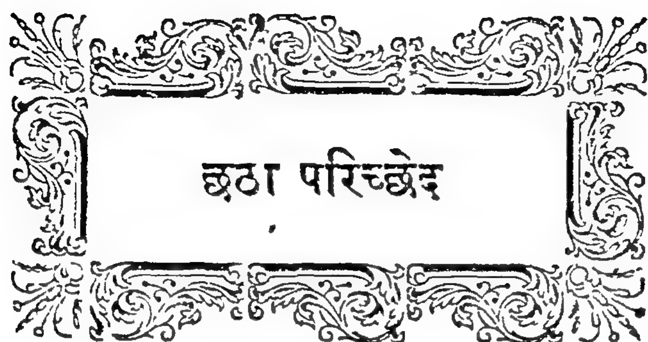
संसार में ऐसे मनुष्य वहुत हैं जो सदा प्रिय वचन वोलते हैं । जो सुनने में प्रिय न लगे किन्तु जिसका फल हितकारी हो ऐसे वचन के कहने और सुनने वाले मनुष्य कहीं नहीं मिलते ।

जो मनुष्य वातें करने में चतुर होते हैं वे हित करने वाले नहीं होते । जो हित करने वाले होते हैं वे प्रियवचन वोलने वाले नहीं होते—वे इस वात की कभी पर्वा नहीं करते कि हम इसको मीठी मीठी वातें वना कर ख़ुश कर लें—किन्तु वे इस वात का ख़याल रखते हैं कि इसकी भलाई हो चाहे इस वक़्त इसको हमारे कहने से बुरा ही लगे । मनुष्य को ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है जो सच्चा मित्र भी हो और चतुर भी हो जिस तरह कि ऐसी दवा मिलनी मुश्किल है जो

रोगी को आराम करने वाली हो और पीने में मीठी भी हो। जो दवा कडुई होती है वही जल्दी आराम करती है।

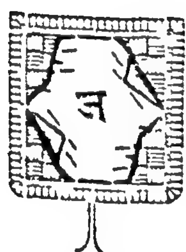
जब राजा इस तरह कह चुका तब एक लाख रुपया उस पण्डित को दिया और पूछा कि आपका नाम क्या है। ब्राह्मण ने अपना गोविन्द नाम ज़मीन पर लिख दिया। राजा ने उस नाम को पढ़ कर कहा कि हे ब्राह्मण! तुम रोज़मर्रा राजभवन में आया करो। तुम को कोई न रोकेगा। तुम को हम यह अधिकार देते हैं कि जो विद्वान् एवं कवि हों उन्हें आनन्दपूर्वक सभा में लाया करो; उनका यहाँ सत्कार हुआ करेगा। हम चाहते हैं कि हमारे राज्य में कोई भी विद्वान् दुखी न रहे; विद्वानों को सुख मिलना चाहिए।





छठा परिच्छेद

एक मुख्य मन्त्री



ब कुछ दिन तक ऐसा ही होता रहा कि जो कोई विद्वान या कवि आवे तभी उसका राज्य की ओर से अच्छी तरह सत्कार किया जावे। तब राजा की चारों ओर यह प्रसिद्धि हो गई कि राजा भोज विद्वानों का बड़ा हित करता है, वह सब दानियों में शिरोमणि है। जब इस तरह की प्रसिद्धि चारों ओर हो गई तब चारों ओर से पण्डित एवं कवि लोग राजा के पास आने लगे। जो कोई आता उसका अच्छी तरह से आदर-सत्कार किया जाता था। जब धन का ख़र्च बहुत ही बढ़ गया तो एक दिन एक मुख्य मन्त्री ने राजा से कहा कि—

पराभव नहीं कर सकता और जिसके पास क़िला होता है उसको कोई जीत नहीं सकता ।

हे देव ! संसार को देखिए । इसके आगे मन्त्री ने एक ऐसा श्लोक सुनाया जिसके दो मानी होते हैं वह इस तरह है कि—

प्रायो धनवतामेव धने तृष्णा गरीयसी ।
पश्य कोटिद्वयासक्त लक्षाय प्रवणं धनु. ॥

जिनके पास धन होता है उन्हीं की धन में अधिक तृष्णा हुआ करती है । दो कोटि से आसक्त हुए (भरपूर हुए) धनुष के लक्ष के वास्ते (निशान के लिए) नम्र हुए (नवे हुए) को देखिए । मतलब यह कि दो करोड़ रुपये वाला भी लाख रुपये और बढ़ जावें इसलिए उद्योग किया करता है । धनुष में दो कोटि—आगे के दो हिस्से—होते हैं बीच से धनुष नव जाता है ।

राजा उसकी दो मानी बात सुन कर कहने लगा कि जो न दान करता है और न धन का भोग करता है, तथा जिसके धन का मित्र भोग नहीं करते वह धन नष्ट हो जाता है । इस तरह कह कर राजा ने उस मन्त्री को उसके अधिकार से अलग कर दिया और उसकी जगह दूसरा मन्त्री नियत करके बोला—

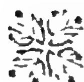
बहुत बड़े कवि को एक लाख रुपया देना, पण्डित को पचास हज़ार और जो सिर्फ़ मतलब को समझने वाला हो उसको एक गाँव और जो मतलब समझने वाले का कहना समझने वाला हो उसको उससे आधा धन देना चाहिए । मेरे

मन्त्रियों में से जो कोई मेरे दान को मने करने का विचार करे तो वह मारने योग्य होगा। मैं यह समझता हूँ कि—

जो धनी अपने धन का दान करता है या स्वयं भोग कर लेता है वही धनियों का धन है। बाक़ी तो मरने के बाद उस धनी के धन का दूसरे ही भोग किया करते हैं।

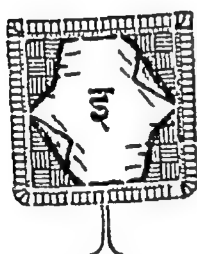
जो दान दिया करता है प्रजा उसीसे प्रेम करती है, जो बड़ा धनी है और दान नहीं करता तो उसको कोई नहीं चाहता। लोग मेघ को चाहते हैं, समुद्र को नहीं।

देखो, जो अधिक इकट्ठा करने में लगा रहता है ऐसा समुद्र तो ज़मीन पर पड़ा रहता है और जल का दान करने वाला मेघ संसार के ऊपर गर्जना किया करता है।



सातवाँ परिच्छेद

कलिंग देश का एक कवि



स तरह जब लोगों को मालूम हुआ कि राजा भोज ख़ूब दान किया करता है तब कलिंग देश से एक कवि आया और एक महीने तक राजा भोज के राज्य में ठहरा रहा, पर राजा के दर्शन नहीं हुए। उस के पास भोजन के लिए ख़र्च भी नहीं रहा। एक दिन राजा अपने महल से शिकार खेलने के वास्ते बाहर निकला। उसको देखते ही कवि ने कहा—

श्रीभोजराज के दर्शन होते ही शत्रु का शस्त्र ज़मीन पर गिर पड़ता है और कवि का दुख जाता रहता है।

इतना सुन कर राजा भोज उस कवि को एक लाख रुपया देकर शिकार खेलने चले गये। जब राजा शिकार खेलने में दत्तचित्त हो रहे थे तब एक म्लेच्छ जाति का लड़का गीत गाने लगा। उसका गाना बड़ा मधुर था। उसका गाना

सुनते ही राजा बड़े ख़ुश हुए और उसको भी उन्होंने पाँच लाख रुपये दे दिये।

जिस कवि को राजा ने एक लाख रुपया दिया था उसने देखा कि राजा तो बड़े दानी हैं। कहाँ तो पाँच लाख रुपया और कहाँ यह भील का लड़का! उस समय राजा के हाथ में एक कमल का फूल था। उसी फूल का बहाना करके कवि ने राजा से एक श्लोक बना कर कहा किः—

एते हि गुणाः पङ्कज सन्तोऽपि न ते प्रकाशमायान्ति।
यल्लक्ष्मीवसतेस्तव मधुपैरुपभुज्यते कोशः॥

हे कमल! यद्यपि तू लक्ष्मी का निवास-स्थान है तथापि तुझ में बहुत से गुण होते हुए भी प्रकाशित नहीं होते। क्योंकि तेरे कोश का मधुप (भ्रमर) उपभोग करते हैं। राजपक्ष में मधुप शब्द से मद्यपादि नीच लोगों से अभिप्राय है।

इसका मतलब राजा ने फ़ौरन समझ लिया कि कवि ने यह हमारे ही ऊपर ढाल कर कहा है। उस कवि को फिर भी राजा ने एक लाख रुपया दिया और कहा किः—

हे कवि! जो समर्थ होते हैं वे कला की ही पूजा किया करते हैं; कुलीनता (अच्छे वंश की) की पूजा नहीं करते। देखो, शिवजी ने बहुत से देवताओं के होते हुए

हूँ। यह विचारते हुए उसने अपने स्वभाव में और मुँह पर भी कुछ तबदीली की। जो पहला कवि था वह राजा के मन का भाव समझ गया और फिर भी वह कमल के ही मिस से राजा से कहने लगाः—

किं कुप्यसि कस्मैचन सौरभसाराय कुप्य निजमधुने।
यस्य कृते शतपत्र प्रतिपत्रं तेऽद्य मृग्यते भ्रमरैः॥

हे शतपत्र (कमल)! तुम किसी पर क्या क्रोध करते हो, तुम सुगन्धभरे अपने मधु पर क्रोध करो; जिस मधु के लिए कि भ्रमर आज तेरा पत्ता पत्ता ढूँढ़ रहे हैं।

इसके बाद कवि ने जब राजा को खुश होता हुआ देखा तब फिर कहाः—

जो मनुष्य कंजूस होता है वह अपनी लक्ष्मी का न तो दान ही कर सकता है और न भोग कर सकता है किन्तु उस को सिर्फ़ हाथ से छू लिया करता है।

जो कोई किसी से कुछ लेने के लिए प्रार्थना करे तो वह प्रार्थना करने वाले से ख़ुश होवे और दान देकर उससे प्रेम करे। ऐसे मनुष्य की जो सुनता है या उसका दर्शन करता है वह स्वर्ग को जाता है।

कवि की बातें सुन कर राजा ने ख़ुश होकर फिर भी उस कवि को एक लाख रुपया दिया। उस कवि ने पीछे से आये हुए पाँच छः कवियों से कहा कि—यह राजा महासरोवर के पुल की भूमि पर रहता है। जब यह घर को जाने लगे तब इससे कुछ कहना। वे सब कवि राजा के पहले किये हुए

सब कामों को तो जानते ही थे। वे सब वहीं खड़े हो गये और उनमें से एक कवि सरोवर (तालाब) का बहाना करके श्लोक बना कर राजा से बोलाः—

आगतानामपूर्णानां पूर्णानामपि गच्छताम् ।
यदध्वनि न संघट्टो घटानां तत्सरो वरम् ॥

वह तालाब श्रेष्ठ है जहाँ कि ख़ाली घड़े आते हों तथा भर कर भी जाते हों, और उनका (ख़ाली आने वाले और भर कर जाने वालों का) मार्ग में संघट्ट (टकराना) न हो—राजा के प्रति यह भाव कि निर्धन आता है वह अवश्य धन लेकर ही जाता है—रास्ते में अन्यान्य नये निर्धनों का पूर्व आकर धन लेजाने वालो से कोई तकरार नहीं होती (अन्यथा किसी को धन मिले और किसी को न मिले तो वह परस्पर ईर्ष्या से झगड़ा करने लगे या एक दूसरे से छीनने ही लगे इत्यादि) अतएव तुम श्रेष्ठ हो।

इतना सुनते ही राजा ने उस कवि को एक लाख रुपया दे दिया। फिर गोविन्द कवीश्वर उन बाक़ी कवियों को देख कर ग़ुस्सा करने लगा। एक कवि उसके ग़ुस्से का मतलब समझ गया और कहने लगा कि:—

कस्य तृषं न क्षपयसि पिबति न कस्तव पयः प्रविश्यान्तः ।
यदि सन्मार्गसरोवर नक्रो न क्रोडमधिवसति ॥

हे अच्छे रास्ते वाले सरोवर! अगर तुम्हारी गोद में मगर मच्छ नहीं रहते तो तुम किस की प्यास को दूर नहीं करते—कौन तुम्हारे पास पानी पीने नहीं आता—और तुम्हारे भीतर (अन्तःकरण में) घुस के पानी कौन नहीं पीता।

राजा ने उस कवि की बातें सुन कर उसको दो लाख रुपया दिया और गोविन्द पण्डित को उसके व्यापारपद से अलग कर के कहा कि तुम सभा में तो आते रहो परन्तु किसी के साथ दुष्टता मत करना—उसके बाद राजा ने आये हुए सब कवियों को एक एक लाख रुपया दे दिया। वे सब अपने अपने घर चले गये। राजा भी अपने घर चला गया। कुछ समय के बाद राजा ने अपने मुख्य मन्त्री को बुलाया और कहा कि:—

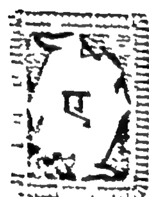
विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्खः स पुराद् बहिरस्तु मे।
कुम्भकारोऽपि यो विद्वान्स तिष्ठतु पुरे मम॥

अगर मेरे शहर में ब्राह्मण भी मूर्ख रहता हो तो वह शहर से निकल जावे और यदि कुम्हार भी विद्वान् हो तो यहाँ आकर बसे।

यह आज्ञा राजा की थी। सब ने इस का पालन किया। धारा नगरी में एक भी मूर्ख न रहा, सब पढ़े लिखे ही रहने लगे। फिर धीरे धीरे राजा की सभा में वररुचि, बाण, विनायक और विद्याविनोद आदि पाँच सौ विद्वान् रहने लगे।

आठवाँ परिच्छेद

शंकर कवि



क दिन राजा भोज कवियों के साथ अपनी सभा में बैठे हुए थे। उस वक्त. द्वारपाल ने आकर प्रणाम किया और कहने लगा कि हे देव! एक विद्वान् दरवाजे पर खड़ा है। राजा ने हुक्म दिया कि बुलाओ। वह कवि अपना दहिना हाथ ऊपर को उठाये हुए आया और कहने लगाः—

हे राजन्! आपका अभ्युदय हो—आप के ऐश्वर्य की वृद्धि हो।

शंकर कवि के पास लिखा हुआ उस समय एक पत्र था। उसको देख कर राजा ने पूछा—हे कवे! इस पत्र में क्या लिखा है?

कवि—श्लोक है।

राजा—किसका है?

कवि—हे भोजराज! आपका ही है।

राजा—इसको अच्छी तरह बाँचिए।

कवि—पढ़ता हूँ—

एतासामरविन्दसुन्दरदृशां द्राक्चामरान्दोलना-
दुद्वेल्लद्भुजवल्लिकङ्कणझणत्कारः क्षणं वार्यताम् ॥

परन्तु ज़रा इन चँवर डुलाने वाली स्त्रियों के कङ्कणों का शब्द बन्द कराइए और पढ़ने लगा कि—

यथा यथा भोजयशो विवर्धते,
सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम्।
तथा तथा मे हृदय विदूयते;
प्रियालकालीधवलत्वशङ्कया ॥

"हे राजन्! जैसा जैसा आपका श्वेत—पवित्र—यश बढ़ा रहा है वैसे वैसे मानो वह तीनों लोको को सफेद किया चाहता है, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। मुझे यह भी मालूम करके दुःख होता है कि मेरी प्यारी स्त्री की अलकावली भी सफ़ेद हो रही है। मतलब यह कि जब आपके यश से सारा संसार सफ़ेद हो जावेगा तब मेरी स्त्री के बाल भी ज़रूर सफ़ेद हो जावेंगे!"

शंकर कवि के चातुर्य के वचन सुन कर राजा भोज बड़े ख़ुश हुए और उन्होंने उस कवि को बारह लाख रुपये देने का हुक्म दे दिया। जो बाक़ी कवि वहाँ बैठे हुए थे वे इस दान को देख कर दंग रह गये और उनके मुँह की शोभा जाती रही। पर राजा के भय से कोई कुछ बोल न सका। इतने ही में राजा किसी कार्य से अपने घर में चले गये। उनके चले जाने पर सभा में जितने पण्डित कवि बैठे हुए थे

वे सब (उसकी राजा की) बुराई करने लगे। कहने लगे कि अहो राजा की मूर्खता! इसकी सेवा करने से क्या फल होगा! वेद-शास्त्रों के जानने वाले और सदा अपने पास रहने वाले कवियों को तो इसने सिर्फ़ एक एक लाख ही रुपया दिया। इसके अधिक ख़ुश होने से ही क्या है! देखो यह शंकर कवि तो बिलकुल गाँव का रहने वाला है; इसकी शक्ति ही क्या है! इस तरह से वे कवि आपस में बातचीत कर चुप हो गये। अब कविशिरोमणि कालिदास आये। उनकी करतूत आगे देखिए।



नवाँ परिच्छेद

कवि कालिदास



क दिन कालिदास कानों में मणि जटित सोने के कुण्डल और साफ़ कपड़े पहने हुए सभा में गया। वह राजकुमार की तरह मालूम होता था, उसके शरीर से ख़ुशबू निकल रही थी। वह कामदेव के समान अत्यन्त सुन्दर था। वह कविता-शरीर धारण किये हुए मालूम होता था। उसको देखते ही विद्वानों की सभा चकित हो गई। उसने आते ही सब कवियों को प्रणाम किया और पूछा कि राजा भोज कहाँ हैं। उन्होने कहा कि राजा महल के भीतर गये हैं। फिर उसने सब कवियों को एक एक पान दिया और हाथियों में शेर की तरह वह उस सभा में बैठ गया।

थोड़ी देर बैठने के बाद उस कवि ने पहले बैठे हुए कवियों से कहा कि राजा ने जो शंकर कवि को बारह लाख रुपये दिये हैं उससे तुमको ग़ुस्सा नही करना चाहिए। तुम

लोगो ने राजा का मतलब नहीं समझ पाया कि राजा ने बारह लाख क्यो दिये हैं। मतलब यह है कि शंकर (महादेव) का पूजन आरम्भ करने में शंकर कवि को तो एक ही लाख से पूजा है। किन्तु वैसी ही निष्ठा रखने वाले, उसी शंकर नाम से प्रसिद्ध, मूर्त्तिमान्, प्रत्यक्ष दूसरे ग्यारह रुद्रो को जान कर और उनमें से हर एक को अलग अलग एक एक लाख रुपया देने के लिए राजा ने एक साथ एक ही शंकर को दे दिये हैं, यही राजा का अभिप्राय है। कालिदास की बात सुन कर सब कवि बड़ा अचम्भा करने लगे।

थोड़ी देर के बाद किसी राजकर्मचारी ने जाकर राजा से कहा कि एक बड़ा विद्वान् आया है। राजा उसको महादेव समझ कर सभा में आया और राजा को मालूम हुआ कि बारह लाख रुपये देने का मेरा मतलब इसने कह दिया है, यह जानकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा को देख कर कवि ने कहा कि तुम्हारा कल्याण हो। राजा ने भी उसको प्रणाम किया और हाथ से हाथ मिला कर उसको अपने राजभवन के भीतर ले गया और एक ऊँचे मकान पर जाकर दोनों बैठ गये। राजा ने पूछा कि हे कवि! कौन कौन से अक्षर आपके नाम में सौभाग्य को प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् आपका नाम क्या है? आपका किस देश से वियोग हुआ, अर्थात् आप कहां से आये हैं? आपके आने से वहां के सज्जनों को तो बड़ा दुःख हुआ होगा। फिर कवि ने राजा के हाथ पर अपना नाम 'कालिदास' लिख दिया। राजा कालि-दास का नाम बांचते ही उसके चरणों में गिर पड़ा। फिर

दोनों को बैठे बैठे रात हो गई। राजा ने कहा कि हे मित्र, सन्ध्या का वर्णन करो। कवि कहने लगा।

> व्यसनिन इव विद्या क्षीयते पङ्कजश्री-
> र्गुणिन इव विदेशे दैन्यमायान्ति भृङ्गाः।
> कुनृपतिरिव लोकं पीडयत्यन्धकारो,
> धनमिव कृपणस्य व्यर्थतामेति चक्षुः॥

जिस तरह किसी दुर्व्यसन में लगे हुए मनुष्य की विद्या नष्ट हो जाती है, इसी तरह रात में कमल की शोभा जाती रहती है। जिस तरह गुणी मनुष्य परदेश में ग़रीबी पाते हैं इसी तरह भौंरे रात को दीनभाव—ग़रीबी—पाते हैं। जिस तरह बुरा राजा प्रजा को दुख देता है इसी तरह अन्धेरा सबको दुख पहुँचाता है। जिस तरह कंजूस मनुष्य का धन व्यर्थ होता है इसी तरह रात को आँखें व्यर्थ हो जाती हैं। सन्ध्या ऐसी होती है।

इसके बाद कवि राजा की प्रशंसा करने लगाः—

> उपचारः कर्तव्यो यावदनुत्पन्नसौहृदाः पुरुषाः।
> उत्पन्नसौहृदानामुपचारः कैतवं भवति॥

जब तक किसी की किसी के साथ मित्रता नहीं हुई तब तक उपचार=तक़ल्लुफ़ करना चाहिए। जिनकी परस्पर मित्रता हो गई उनका आपस में तक़ल्लुफ़ करना मानो ठगी है।

जो राजा कवियों के क्रम को और उनकी बढ़िया काव्य-रचना को समझता है उसने मानों सोने से भरी हुई सारी पृथिवी कवियों को दे डाली।

अच्छे कवि के शब्दो की सुन्दरता एवं उनके भाव को अच्छा ही कवि जान सकता है. दूसरा नही। बाँझ स्त्री गर्भवती स्त्री की बातों को क्या समझे।

जब इस तरह से कालिदास ने कहा तब उन दोनों की परस्पर गाढ़ी मैत्री हो गई।

कालिदास कविशिरोमणि तो थे ही। उनकी एक एक बात बड़ी अनोखी होती थी। उनकी बातों से प्रसन्न होकर राजा भोज ने उनको बहुत सा रुपया दिया। फिर कालिदास ने भोज की प्रशंसा करना शुरू किया:—

महाराज श्रीमज्जगति यशसा ते धवलिते :
पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते।
कपर्दी कैलासं करिवरमभौमं कुलिशभृ-
त्कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना॥
नीरक्षीरे गृहीत्वा निखिलखगततीर्याति नालीकजन्मा.
तक्रं धृत्वा तु सर्वानटति जलनिधींश्चक्रपाणिर्मुकुन्द.।
सर्वानुत्तुङ्गशैलान्दहति पशुपतिः फालनेत्रेण पश्यन्
व्याप्ता त्वत्कीर्तिकान्ता त्रिजगति नृपते भोजराज क्षितीन्द्र!
विद्वद्राजशिखामणे तुलयितुं धाता त्वदीयं यशः
कैलासं च निरीक्ष्य तत्र लघुतां निक्षिप्तवान्पूर्तये।
उक्षाणं तदुपर्युमासहचरं तन्मूर्ध्नि गङ्गाजलं
तस्याग्रे फणिपुङ्गवं तदुपरि स्फारं सुधादीधितिम्॥
स्वर्गाद्गोपाल कुत्र व्रजसि सुरमुने भूतले कामधेनो-
र्वत्सस्यानेतुकामस्तृणचयमधुना मुग्धदुग्धं न तस्या।
श्रुत्वा श्रीभोजराजप्रचुरवितरणं व्रीडशुष्कस्तनी सा:
व्यर्थो हि स्यात्प्रयासस्तदपि तदपि मे सर्वथा सर्वदा

हे महाराज श्रीमन् ! आपकी कीर्ति इतनी फैल गई है कि सारा संसार सफ़ेद हो रहा है। इसी लिए परम पुरुष विष्णु क्षीरसागर को ढूँढ़ रहे हैं। महादेवजी कैलाश को ढूँढ़ रहे हैं। राजा इन्द्र ऐरावत हाथी को ढूँढ़ रहा है। राहु चन्द्रमा को ढूँढ़ रहा है और ब्रह्माजी हंस को ढूँढ़ रहे हैं अर्थात् आपकी कीर्ति से सब संसार सफ़ेद दिखाई देता है। ये चीज़ें भी सफेदी में मिल कर खो गईं !

हे भोजराज ! आपकी कीर्ति-कान्ता तीनों लोकों में व्याप रही है। आपके यश से सब चीज़ें सफ़ेद हो गई हैं इसलिए ब्रह्माजी तो जल और दूध लेकर सब पक्षियों के पास जाते हैं अर्थात् हंस की परीक्षा करते हैं। विष्णु भगवान् मट्ठा लेकर सब समुद्रों के पास फिरते हैं अर्थात् दूध की परीक्षा करते हैं और महादेवजी अपनी अग्निस्वरूप तेज़ आँखों से देखते हुए सब ऊँचे पर्वतों को जला रहे हैं अर्थात् चाँदी के पर्वत कैलास की परीक्षा करते हैं।

कवि कालिदास के वाक्यों को सुन कर राजा भोज बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने फिर राजा को उसके सुनाये हुए श्लोकों का ख़ूब रुपया दिया। कालिदास को राजा ने अपनी सभा में सर्वोपरि पण्डित मान कर रक्खा।



दसवाँ परिच्छेद

कुछ पण्डित और कालिदास



व दिन वदिन यह वात अधिक फैलती गई कि राजा भोज को कविता का वड़ा शौक़ है। तव कुछेक कवियों ने परस्पर सलाह की कि नगर से वाहर चल कर भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर पर वैठ कर कविता करनी चाहिए। वे सव वहाँ गये और कविता करने लगे। उनमें से एक पण्डित अभिमानी था। उसने एक श्लोक का चौथा चरण वनाया। दूसरा दूसरे ने पूरा किया। पर श्लोक का आगे का आधा हिस्सा किसी से पूरा न हो सका। इतने ही में कालिदास देवमन्दिर में देवी के दर्शन करने के वास्ते गये। कालिदास को देखते ही सव कवि कहने लगे कि हम सव वेद शास्त्रों के जानने वाले हैं। फिर भी राजा हम को कुछ भी नहीं देता। आप जैसों को तो वहु वहुत धन दिया करता है। इसलिए हमने विचार किया था कि यहाँ आकर हम भी कविता वनावेंगे। हमने वहुत विचार किया पर अव तक आधा ही श्लोक वन सका है, आधा वाक़ी है सो

आधा आप बना दीजिए। पूरा श्लोक हो जाने पर हम राजा को सुनावेंगे जिससे वह हमको कुछ देगा। और वे अपने बनाये हुए श्लोक का आधा हिस्सा कालिदास को सुनाने लगे। कालिदास ने आधा श्लोक सुन कर उसके आगे का हिस्सा भी पूरा कर दिया। अब वे सब कवि राजा के दरवाज़े पर गये और द्वारपालों से कहने लगे कि हम कविता करके लाये हैं। यह कविता राजा को दिखलाओ। वह द्वारपाल आनन्दपूर्वक हँसते हुए राजा के पास जाकर प्रणाम करके कहने लगाः—

राजमाषनिभैर्दन्तैः कटिविन्यस्तपाणयः।
द्वारि तिष्ठन्ति राजेन्द्रच्छान्दसाः श्लोकशत्रवः॥

हे राजेन्द्र! राजमाष (लोबिया) के से दाँतों वाले, कमरों पर हाथ धरे हुए, श्लोकशत्रु (साहित्यशून्य) शुष्क छान्दस (तुकबन्द) द्वार पर खडे हैं।

राजा ने उन सबको बुलाया। वे सभा के भीतर गये और मिलने के बाद एक ही साथ सब अपनी रची हुई कविता को पढ़ने लगे। राजा ने कविता को सुनते ही जान लिया कि इसमें आधा श्लोक इन पण्डितों का बनाया हुआ है और आधा कालिदास का। राजा ने उन सबसे कहा कि जिसने श्लोक के आगे का आधा हिस्सा बनाया है उसका हम रुपया देते हैं। पहले आधे हिस्से का कुछ नहीं। उन सब कवियों के साथ कवि कालिदास भी वहीं थे, उनको देख कर राजा ने कहा—हे कवे! आगे का आधा हिस्सा तुमने बनाया है? कवि कालिदास ने कहाः—

कविता का भाव अनुभवी मनुष्य ही जान सकता है। जिसने कविता के रस का अच्छी तरह अनुभव किया है वही कविता का भाव समझ सकता है।

राजा ने कहा कि हे कवि ! तुम ठीक कहते हो।

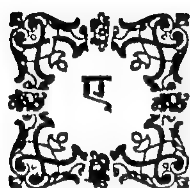
सरस्वती के काव्यरुपी अमृतफल में अपूर्व रस होता है। इस वाणी का ऐसा अजीब रस होता है कि चखने के समय तो सबको एकसा मालूम पडता है; पर इस फल के स्वाद को अच्छी तरह समझनेवाला केवल कवि ही होता है।

जगत् की ओर विचार करते हुए ये दो चीजें मेरे हृदय में बस गई हैं:—१—ईख से पैदा होने वाली शकर, गुड आदि चीज़ें, और २—कवियों की बुद्धि।



ग्यारहवाँ परिच्छेद

कुविंद जुलाहा



एक दिन द्वारपाल राजा के पास आया और प्रणाम करके बोला कि राजन् ! एक लक्ष्मीधर नामक कवि द्रविड देश से आया है। वह दरवाज़े पर खड़ा है। राजा ने कहा कि उसको यहाँ सभा में ले आओ। द्वारपाल ने उसको सभा में जाने के वास्ते कहा। वह सूर्य के समान प्रकाशित होता हुआ सभा में गया। वह कवि बड़ा कान्तिमान् और चतुर था। उसको देख कर राजा ने विचारा और कहा कि:—

सिर्फ़ स्वरूप (चेहरा) ही मालूम कर लेने से जो सब इच्छाओं को पूरा कर देते हैं और मंगतों के दीन वचन नहीं सुनते—अर्थात् उनको धनी बना देते हैं ऐसे मनुष्य धन्य कहलाते हैं।

इसके बाद उस कवि ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा कि हे राजन् ! यह तुम्हारी सभा पण्डितों से शोभायमान हो रही है और तुम विष्णु के समान मालूम पड़ते हो। इसलिए

मेरा पाण्डित्य ही क्या है; तो भी कुछ कहता हूँ। वह श्लोक कहने लगाः—

> भोजप्रतापं तु विधाय धात्रा
> शेषैर्निरस्तैः परमाणुभिः किम् ।
> हरेः करेऽभूत्पविरम्बरे च
> भानुः पयोधेरुदरे कृशानुः ॥

क्या भोज के प्रताप को बना कर शेष बचे हुए परमाणुओं से ब्रह्मा ने इन्द्र के हाथ में वज्र और आकाश में सूर्य्य तथा समुद्र में वड़वानल यह, वस्तु (भोज राजा के प्रताप के बनाने में से बचे परमाणुओं से) बना है। (भाव यह कि हे भोज! तुम्हारा प्रताप इन्द्र के वज्र, सूर्य और वडवानल से भी बढ़ कर है—इत्यादि)

कवि की ये बातें सुन कर सभा के मनुष्य चमत्कृत हो गये। राजा भी बड़ा ख़ुश हुआ और लाखों रुपया उनको दे डाला। फिर कवि ने कहा कि देव! मैं यहाँ पर अपने कुटुम्बसहित रहने के विचार से आया हूँ। क्योंकि आप जैसे क्षमावान्, दाता, गुणग्राही स्वामी बड़े पुण्य के प्रताप से मिलते हैं और अनुकूल, पवित्र, चतुर, कवि और विद्वान् स्वामी तो मिलना ही दुर्लभ है।

इसके बाद राजा ने अपने मुख्य मंत्री को बुलाया और कहा कि इस कवि को रहने के लिए घर देना चाहिए। मन्त्री ने सारा नगर देख डाला पर ऐसा एक भी मनुष्य न मिला जो मूर्ख हो और घर से निकाल कर उस कवि को उसके घर में रक्खे। घूमते घूमते एक जुलाहे का घर मन्त्री को दिखलाई

दिया। उसको बुला कर कहा कि तू इस घर से निकल जा, इसमें एक विद्वान् रहेगा। यह बात सुन कर जुलाहा दौड़ा हुआ राजा की सभा में पहुँचा और राजा से प्रणाम करके कहने लगा कि देव! आपका मंत्री मुझ को मूर्ख समझ कर घर से निकाल रहा है। अब तू मालूम कर कि मैं मूर्ख हूँ या पढ़ा-लिखा हूँ। उसने कहा कि:—

मैं कविता तो करता हूँ पर अच्छी कविता नहीं कर सकता, अच्छी कविता करता हूँ तो बहुत देर लगती है और बड़ी कोशिश करनी पड़ती है। हे राजाओं के मस्तकमणियों से शोभित चरण आसन वाले उत्तम राजेन्द्र! हे दण्ड देने के विधान जानने वाले राजन्! मैं कविता करता हूँ और जुलाहे का काम भी करता हूँ; और अब जाता हूँ।

जुलाहे ने राजा के लिए 'तू' इस तरह एकवचन का प्रयोग किया था, इस लिए राजा ने कहा कि अरे जुलाहे! तेरी कविता तो मनोहर है। कविता के पदों का जोड़ भी अच्छा है, तेरी कविता में मधुरता और सुन्दरता दोनों हैं पर विचार करके कविता कहनी चाहिए।

राजा की बात सुन कर कुविंद जुलाहा ग़ुस्से में भर कर कहने लगा कि यहाँ उत्तर तो मालूम देता है पर मैं कहना नहीं चाहता। क्योंकि विद्वान् के धर्म से राजधर्म में फ़र्क है। राजा ने कहा—अगर तुम्हारे पास जवाब है तो कहो। उसने कहा— हे राजन्! कालिदास के सिवा दूसरे को मैं कवि नहीं समझता। आपकी सभा में कालिदास के सिवा कविता के

मर्म को जानने वाला दूसरा कवि कौन है। मेरी राय में कोई नहीं।

जो गुरु की कृपारूप अमृत पाक से पैदा हुआ सरस्वती वाणी का ऐश्वर्य है वह कवि को ही मिल सकता है। जो केवल पाठ की प्रतिष्ठा की सेवा करने वाले हैं उनको नहीं मिल सकता। जिस तरह पवित्र पानी से भरे हुए तालाब में पड़ा हुआ भैंसा कीचड़ ही किया करता है वह तालाब की सुगन्धि नहीं ले सकता। फिर जुलाहे ने कहा कि:—

बालकपन में पुत्रों को, तारीफ़ करते समय कवियों को और युद्ध करते समय योद्धाओं को, 'तू' शब्द से कहना ही अच्छा माना गया है। हे राजन्! तुमको यह 'तू' शब्द क्यों बुरा मालूम हुआ? याद तो करो।

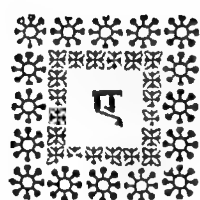
इसके बाद राजा उस जुलाहे से बड़ा प्रसन्न हो गया और उसको ख़ूब रुपया दिया और कहा कि तुम डरो मत। तुम्हारा कोई कुछ न करेगा। वह आनन्दपूर्वक उसी मकान में रहने लगा।





बारहवाँ परिच्छेद

राजा भोज और बाण पण्डित



एक दिन राजा भोज रात में वेश बदल कर नगर में घूमने को निकले। एक बाण नामक पण्डित था। राजा भोज उसका मान करते थे तथा धनादि से अच्छी सहायता किया करते थे। इतना होने पर भी वह पण्डित अपने पूर्वकर्मानुसार सदा ग़रीब ही रहता था। अमीर कभी नहीं बना। राजा घूमते घूमते उसी पण्डित के मकान पर पहुँच गये। उसी वक़् रात में पण्डित ग़रीबी से घबरा कर अपनी स्त्री से कह रहा था कि देवि! राजा भोज ने तो कई बार मेरी इच्छा पूरी की। अब भी यदि उससे प्रार्थना करूँगा तो ज़रूर कुछ न कुछ देगा पर बार बार प्रार्थना करने से मूर्ख की भी जिह्वा थक जाती है। बार बार किसी से माँगा नहीं जाता। इस तरह कह कर वह कुछ देर तक चुप हो रहा। फिर कहने लगाः—

हे महादेव जी ! हलाहल विष और किसी से माँगना इन दोनों में कौनसी बात कठिन है ? इनमें जो अधिक और कम हो उसको आपकी ही जिह्वा, ठीक ठीक कह सकती है। किसी से मांगना ज़हर से भी अधिक बुरा है। महादेवजी ने ज़हर भी खाया है और याचना भी की है अतएव महादेवजी से यह बात पूछी गई है। मतलब यह कि—

हे देवी ! दरिद्रता की परम मूर्त्ति मांगना है। धन का न होना ही कुछ बड़ा दरिद्ररूप नहीं है। शिवजी कौपीन धारण करने वाले हैं तो भी लोग उनको परमेश्वर मानते हैं और उनकी सेवा करते हैं।

दूसरों की सेवा सुख की जड़ काटने वाली है. जो किसी की सेवा करता है उसको कभी सुख नहीं मिल सकता। बुरा व्यसन धन की जड़ काटने वाला है, व्यसनी के पास धन नहीं रह सकता। गुरुओं की जड़ को काटने वाली याच्या—मांगना है। बुरा राजा प्रजा की जड़ को नष्ट करने वाला होता है। जिसका स्वभाव अच्छा नहीं, जो क्रोधी और दुर्व्यसनी है ऐसे मनुष्य का लड़का कुल की जड़ को काटने वाला होता है।

इस लिए ग़रीबी होने पर भी मुझ से राजा के आगे कुछ प्रार्थना नहीं हो सकेगी।

क्षणमात्र में आकर चला जाने वाला मेघ उसको अच्छा मालूम होता है और नित्य प्रति अपनी किरणों से फैलने वाला सूर्य उसको खलता मालूम पड़ता है। अर्थात् मूढ़ मे

देव के समय आकर भूखे चले जाते हैं, इससे मेरे मन में बड़ा दुःख होता है।

दरिद्रतारूपी अग्नि का संताप संतोषरूपी जल से शान्त हो सकता है; परन्तु माँगने वाले की आशा नष्ट होने का अन्तर्दाह कैसे सहा जावे!

राजा भोज बाण पण्डित की ये सब बातें अच्छी तरह सुन रहा था। उसने अपने मन में सोचा कि इस समय पण्डित को मैं कुछ न दूँगा, सवेरे इसका अच्छी तरह सत्कार करूँगा। यह सोच विचार कर राजा वहाँ से चल दिया।

जिस कविता से मूर्ख मनुष्य चतुर नहीं बन जाते, जिस बली ने बुरे व्यसन वाले को ठीक रास्ते पर नहीं पहुँचाया और जिस धनी ने अपने धन से माँगने वाले को अपने समान धनी नहीं बना दिया उस कविता, बल और धन से क्या हुआ—अर्थात् कुछ नहीं।

इस तरह विचारता हुआ राजा घूम ही रहा था कि रास्ते में दो चोर जाते हुए मिले। उनमें से एक शकुन्तक नाम का चोर दूसरे मराल चोर से कहने लगा कि हे भाई! इस समय रात है और बड़ा अँधेरा हो रहा है तो भी मैं सिद्ध अंजन के कारण संसार की छोटी से छोटी सब चीज़ों को देख रहा हूँ। मैं देखता हूँ कि जो मैं यह ख़ज़ाने से सोना आदि धन लाया हूँ यह भी मुझको सुख देने वाला नहीं है। फिर शकुन्तक कहने लगा कि चारों ओर रक्षा करने वाले सिपाही घूम रहे हैं, और अगर तुरही और ढोल आदि की आवाज़ हुई तो जाग जावेंगे। इस लिए अच्छा हो कि चुराये हुए धन को

बाँट कर अपने अपने हिस्से में आये हुए धन को लेकर जल्दी चल देना चाहिए। मराल ने कहा, हे मित्र ! यह धन दो करोड़ है। तुम इसका क्या करोगे ? शकुन्तक ने कहा कि यह धन मैं किसी विद्वान् ब्राह्मण को दूँगा, जिससे कि वह वेदवेदांग का जानने वाला ब्राह्मण किसी दूसरे से न माँगे। मराल ने कहा कि यह आपका विचार बहुत अच्छा है।

दान करते हुए, युद्ध करते हुए और किसी किताब का पाठ करते हुए यदि रूँगटे खड़े हो जावें तो असली दान और पुरुषार्थ यही है।

मराल ने फिर कहा कि इस धन का दान करने से तुम को पुण्य-फल कैसे मिल सकता है ? यह धन तो चोरी का है। शकुन्तक ने कहा कि चोरी करके धन इकट्ठा करना तो हमारा कुलपरम्परा का धर्म है। मराल ने कहा कि यह समझ कर कि अगर सिर कट जावे तो भी परवा नहीं पर धन चुराना चाहिए। इस तरह बड़े दुख उठा कर तुमने इस धन को इकट्ठा किया है। यह धन तुम से किस तरह दिया जावेगा ? शकुन्तक ने कहा कि :—

मूर्ख मनुष्य गरीब हो जाने के डर से अपने धन का कभी दान नहीं करता और जो बुद्धिमान् होता है वह यह डर करके कि गरीबी आने पर सब धन नष्ट हो जावेगा धन का दान सदैव करता रहता है। इसलिए दान करना ही अच्छा है।

इस तरह दोनों के संवाद को सुन कर राजा बड़ा खुश हुआ।

तेरहवाँ परिच्छेद

सुख, मन्त्री और एक चोर



मन्त्रियों ने जब देखा कि राजा रुपया ख़र्च कर रहा है तब एक दिन राजा के सोने के स्थान पर एक मन्त्री एक काग़ज़ पर श्लोक का चौथा चरण लिख कर खाट से चिपका आया कि—"आपदर्थे धनं रक्षेत्" आपत्ति के समय के लिए मनुष्य को धन की रक्षा करनी चाहिए।

जब राजा सोकर उठा तब उसने खाट में एक काग़ज़ चिपका हुआ देखा। उसने उसको पढ़ा और पढ़ कर वह हँसने लगा। फिर उसी काग़ज़ पर उसने श्लोक का दूसरा चरण लिख दिया कि "श्रीमतामापदः कुतः" अर्थात् श्रीमानों को आपत्ति कहाँ ? धनिकों को आपत्ति हुआ करती है।

दूसरे दिन उस मन्त्री ने उस लिखे हुए वाक्य को पढ़ा और श्लोक का तीसरा चरण लिख दिया "सा चेदपगता लक्ष्मीः" यदि वह लक्ष्मी चली जावे तब क्या हो ?

जब राजा ने फिर इस वाक्य को लिखा देखा तब उसने श्लोक का शेष चौथा चरण लिख दिया कि "संचितार्थो विनश्यति" अर्थात् इकट्ठा किया हुआ धन भी तो नष्ट हो जाता है।

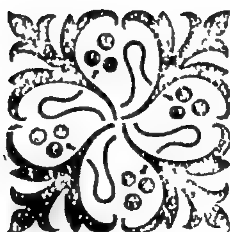
जिस मन्त्री ने लिख कर काग़ज़ चिपका दिया था उसने जब जब राजा के लिखे हुए चौथे वाक्य को पढ़ा तब उसको चेत हुआ। वह समझ गया कि राजा का विचार सच्चा है। धन की गति चञ्चल है वह एक जगह कभी नहीं रहता। फिर मन्त्री राजा के सामने आकर हाथ जोड़ कहने लगा कि हे राजन्! वह काम मैंने ही किया था मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

इसके बाद राजा अपना काम-काज करके अपने महल में सो गया। इसी रात में एक चोर सुरंग लगा कर राजा के सोने के मकान में चोरी करने के लिए आया। वहाँ उसको बहुत से रत्नजटित अनेक ज़ेवर आदि मिल गये। माल लेकर जब चोर जाना ही चाहता था कि राजा की आँख खुल गई। राजा जाग कर एक श्लोक के तीन चरण बना कर बार बार पढ़ने लगा, जिनका मतलब यह था कि—

मेरे चित्त को हरने वाली मेरी स्त्रियाँ हैं। मित्र भी मेरे अनुकूल हैं। मेरे भाई-बन्धु सज्जन हैं। मेरे सेवक नम्रता-पूर्वक बोलने वाले हैं। मेरे हाथी गर्जने वाले और घोड़े चञ्चल हैं। इस तरह वह अपने सुख का वर्णन कर रहा था। इसके आगे का श्लोक का चौथा चरण राजा से न बनता था। वह श्लोक पूरा करने के लिए बार बार उन्हीं पदों को कहने

लगा। चोर भी सुन रहा था। उसने चौथा चरण बना कर कह दिया कि—"सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति" हे राजन् ! जब आँखें मिच जाती हैं, मनुष्य मर जाता है, तब कुछ भी नहीं। सब यहीं पड़ा रहता है।

राजा इस वाक्य को सुन कर आश्चर्य करने लगा कि इस समय यह मनुष्य यहाँ कहाँ से आया। राजा उठकर उसकी ओर चला। वह हाथ जोड़ कहने लगा कि हे राजन् ! मैं चोर हूँ। मुझे क्षमा कीजिए। राजा उसका बनाया हुआ वाक्य सुन कर पहले ही से ख़ुश हो रहा था। उसने उसको सब चुराया हुआ माल देकर संतुष्ट किया। वह वहाँ से चला गया।



चौदहवाँ परिच्छेद

लड़के का जलना



एक दिन राजा भोज रात को वेश बदल कर अपने नगर का हाल देखने के लिए निकले। इधर उधर घूमते हुए वे एक ब्राह्मण के घर जा खड़े हो गये। वहाँ देखा कि ब्राह्मण की स्त्री अपने पति की सेवा में लगी हुई है। उसका पति उसकी गोद में सिर रक्खे सो रहा है। और उसका लड़का जलती हुई आग में गिर पड़ा है। वह लड़का आग में पड़ा हुआ ही हँस रहा है और बातें कर रहा है। उसको आग ने बिलकुल नहीं सताया। उसकी माता पतिव्रता थी। उसने अपने लड़के का उस समय कुछ ख़याल न किया। पति को न जगाया। यह सब हाल देख कर राजा अपने मकान पर चले गये। दूसरे दिन राजा ने एक श्लोक का एक चरण बना कर कहा कि "हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः" अग्नि चन्दन के समान ठंडी है। यह सुन कर सब पण्डितों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह

कैसे हो सकता है। परन्तु कालिदास ने पूरा श्लोक बना कर उत्तर दिया।

सुत पतन्त प्रसमीक्ष्य पावके ;
न बोधयामास पति पतिव्रता।
तदाभवत्तत्पतिभक्तिगौरवा-
द्धुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः ॥

अपना पुत्र आग में पड़ा हुआ है पर वह पतिव्रता स्त्री अपना काम छोड़ कर उसको आग में से नहीं निकालती। उसके पुत्र को कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। आग को पतिव्रता का डर था इस लिए वह चन्दन की तरह ठंडी हो गई।

यह सुन कर राजा भोज अपने मन में विचार करने लगा कि इस काम को तो मैंने ही देखा था। दूसरा मनुष्य वहाँ कोई नहीं था। इस कालिदास ने ज्यों का त्यों हाल कह दिया। यह बड़ा बुद्धिमान् और विचारशील है।



पन्द्रहवाँ परिच्छेद

दरिद्रता का नाश

एक ब्राह्मण बड़ा ग़रीब था। वह पढ़ा लिखा भी थोड़ा ही था। वह अपना पेट पालने के लिए बड़ी मेहनत किया करता था। राजा भोज की उसने सुन भी रक्खा था। एक दिन उसने धारा नगरी को जाने का पक्का विचार किया। उसने मन में विचार किया कि राजा के पास जाना तो चाहिए पर राजा की भेंट के लिए कुछ जरूर चाहिए। क्योंकि राजा, गुरु, ज्योतिषी, वैद्य और मित्र के घर जाने पर कुछ भेंट ज़रूर ले जानी चाहिए। यह सोच कर कुछ भेंट ले जाने का ब्राह्मण ने पक्का विचार कर लिया। अब वह सोचने लगा कि क्या ले जाना ठीक है। वह स्वयं तो बहुत ग़रीब था। रुपया कुछ खर्च करने की तो शक्ति थी नहीं। विचार करते करते उसने निश्चय किया कि [illegible] [illegible] देता चलूँ तो अच्छा है। [illegible] कुछ

टुकड़े ले आया और उनको एक फटे कपड़े में बाँध कर धारा नगरी को चल दिया। वह दूसरे दिन वहाँ पहुँच गया।

राजा भोज की सभा के स्थान में वह जाकर ठहर गया। मार्ग चलते चलते वह बहुत थक गया था। इससे नींद आने लगी। वहाँ जो मनुष्य थे उनसे उसने पूछा कि भाई! मैं यहाँ सो जाऊँ? और कृपा करके यह ख़याल रखना कि जब सभा में सब मनुष्य आ जावें तब मुझे जगा देना। वहाँ के मनुष्यों ने कह दिया कि सो जाओ। वह सोते समय अपने ईख के टुकड़ों को सिर के नीचे रखकर सो गया। उसके सो जाने पर वहाँ के मनुष्यों ने उसके सिर के नीचे से ईख के टुकड़ों की पोटली निकालने का विचार किया। धीरे से पोटली निकाल कर उन्होंने उस पोटली में से वे टुकड़े तो निकाल लिये और लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़े पोटली में बाँध दिये। फिर वह पोटली वहीं सिर के नीचे रख दी।

जब सभा मनुष्यों से भर गई तब एक मनुष्य ने उसको जगा दिया। वह घबरा कर उठा और अपनी पोटली लेकर सभा में आया। उसने सबके देखते हुए वह पोटली राजा भोज के सामने खोल दी। वह तो यही समझता था कि इसमें ईख के टुकड़े हैं पर पोटली के खुलते ही उसमें से लकड़ी के टुकड़े निकले। लकड़ी के टुकड़े देख कर सब लोग अचम्भा करने लगे कि यह क्या! राजा भोज भी अपने सामने लकड़ी के टुकड़े देख कर ग़ुस्सा करने लगा। वह ब्राह्मण भी ईख के टुकड़ों की जगह लकड़ी के टुकड़े राजा के सामने देख कर डर गया। राजा के मन

का विचार और ब्राह्मण को डरता हुआ देख कर कालिदास कहने लगा कि महाराज! इस ब्राह्मण का लकड़ी के टुकड़े आपके पास रखने का यह मतलब है कि—

दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यद्रुमैर्भूषित
दग्धा वायुसुतेन हेमनगरी लंका पुनः स्वर्णभूः।
दग्धो लोकसुखो हरेण मदनः किं तेन युक्तं कृत
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि॥

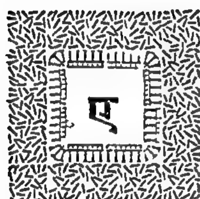
अच्छे अच्छे वृक्षों से शोभायमान खाण्डव वन को आग देकर अर्जुन ने जला दिया। लंका जो सब रत्नों से भरी हुई थी उसको हनूमान् ने भस्म कर दिया। सर्वप्रिय काम-देव को महादेवजी ने जला दिया। परन्तु जो सब को दुख देनेवाली ग़रीबी है उसको आज तक किसी ने भस्म नहीं किया। इस ब्राह्मण का यह मतलब है कि इन लकड़ी के टुकड़ों से मेरी दरिद्रता भस्म कीजिए।

कालिदास की बुद्धिमता को धन्य है! कालिदास के कहने से राजा का क्रोध बिलकुल जाता रहा। उसने ख़ुशी से उस ब्राह्मण को ख़ूब रुपया दिया। जब ब्राह्मण को रुपये मिल गये तब वह पीछे की ओर देखने लगा। राजा पूछने लगा कि अरे ब्राह्मण! तूने पीछे की ओर क्यों देखा? उसने कहा कि महाराज! मैं पीछे इस लिए देखने लगा हूँ कि बहुत दिन से मेरे पीछे ग़रीबी लगी हुई है वह आप से पाये हुए रुपयों के मिलने से दूर हुई कि नहीं। ब्राह्मण की बात सुन कर सब लोग हँसने लगे और वह वहाँ से चला गया।

———



फूलों की परीक्षा



क दिन राजा भोज ने अपने मन में विचार किया कि हमारी सभा में पण्डित बहुत हैं। ये सब पण्डित अत्यन्त चतुर हैं। आज मैं इन सब की चतुरता की परीक्षा करना चाहता हूँ। राजा ने यह विचार कर एक माली को बुलवाया और उससे कहा कि तुम एक नक़ली फूलों का हार बना लाओ। उसने घर जाकर नक़ली फूलों का हार बना लिया और वह राजा के पास लाया। वह हार देखने में बिलकुल असली ही मालूम होता था। जो कोई उसको देखता था सब यही कहते थे कि असली हार है। राजा ने नक़ली हार देख कर माली से कहा कि एक दूसरा हार असली फूलों का भी बना कर ले आओ। वह असली हार भी बना लाया। अब दोनों हारों में कोई फ़र्क़ मालूम नहीं पड़ता था। देखने से कोई यह नहीं कह सकता था कि असली कौन है और नक़ली कौन है। जब

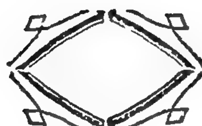
तक कोई उन हारों को हाथ में न ले तब तक दूर से असली और नक़ली बता देना बड़ी चतुरता का काम था। कोई नहीं बता सकता था।

भोज की सभा में जब सब पण्डित इकट्ठे हो गये तब राजा भोज ने अपने एक नौकर को आज्ञा दी कि दोनों हार हाथ में लेकर सभा में खड़े हो जाओ। वह उन दोनों हारों को हाथ में लेकर खड़ा हो गया। राजा ने सभा के सब पण्डितों से कहा कि देखो ये दो हार हैं। इन में एक तो असली है और एक नक़ली। आप लोग बिना हाथ से छुए बतलाइए कि कौन सा हार असली फूलों का है और कौन सा नक़ली?

उन हारों को देख कर सब चकित हो गये। दोनों हार एक से ही मालूम होते थे। उन में असली और नक़ली का भेद बता देना मुश्किल काम था। कोई न बता सका। थोड़ी देर बाद कवि शिरोमणि कालिदास ने कहा कि हे राजन्! यहाँ अँधेरा है। मुझे ठीक ठीक हार दिखलाई नहीं देते। यदि आप इस मनुष्य को बाहर खड़ा होने की आज्ञा दें तो मैं देख कर बतला सकता हूँ कि कौन सा हार असली है और कौन सा नक़ली।

मक्खियाँ बैठी हुई हैं वह असली हार है और जिस पर एक भी मक्खी नहीं है वह नक़ली हार है।

कालिदास की इस चतुरता की राजा ने और सभा में बैठने वाले सभी मनुष्यों ने प्रशंसा की। राजा भोज ने यह काम हँसी के लिए किया था। वह कालिदास की प्रशंसा करता हुआ बड़ा खुश हुआ।



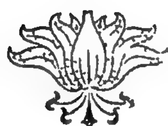
सत्रहवाँ परिच्छेद

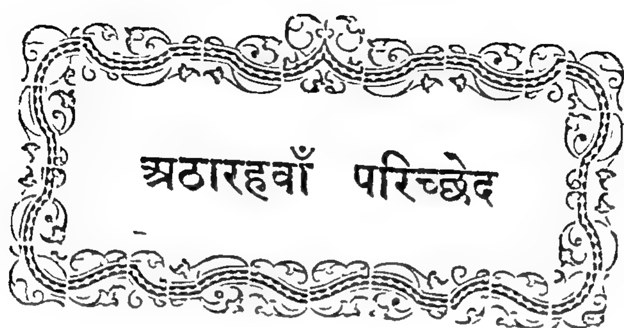
एक ब्राह्मणी

एक दिन राजा भोज अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे। द्वारपाल आया और राजा को दण्डवत् करके कहने लगा कि महाराज एक विदुषी ब्राह्मणी द्वार पर आई है। वह आपके दर्शन करना चाहती है। राजा ने आज्ञा दी कि आने दो। जब ब्राह्मणी राजदरबार में पहुँची तब राजा ने ब्राह्मणी को प्रणाम किया। और ब्राह्मणी ने राजा को आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद हो जाने के बाद वह अपना बनाया हुआ एक श्लोक पढ़ने लगी। उस श्लोक का तात्पर्य यह था कि:—

वृद्धा ब्राह्मणी का श्लोक सुन कर राजा बड़ा ख़ुश हुआ। उसने उस वृद्धा ब्राह्मणी को एक अशर्फ़ियों का भरा हुआ कलश दिया। फिर ख़ज़ानची ने धर्मपत्र लिख दिया कि—राजा भोज ने इस वृद्धा ब्राह्मणी को, प्रताप की स्तुति करने पर ख़ुश होकर राजसभा में सुवर्णमणियों से भरा हुआ यह घड़ा दिया है।

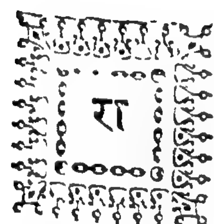
राजा भोज के समय में सब स्त्रियाँ भी बड़ी विदुषी थीं। स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह विद्या पढ़ लिख कर अपनी सन्तान को अच्छी तरह सुधारती थीं। बिना स्त्रियों के पढ़े-लिखे देश का कल्याण होना असम्भव है।





अठारहवाँ परिच्छेद

कवि कलिदास का अनादर



जा भोज की सभा में जितने कवि रहते थे उन उन सब में राजा भोज कालिदास को मन से अच्छा समझते थे; वह उन्हीं से अधिक प्रीति भी करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि भोज किसी विशेष दुर्व्यसन के कारण कालिदास से नाराज़ हो गये। उनके मन में विचार हुआ कि किसी भी मनुष्य को, और विशेषतया विद्वान् को कभी किसी दुर्व्यसन में न फँसना चाहिए। इसीसे धीरे धीरे कालिदास से भोज ने उदासीनता प्रकट करनी शुरू कर दी। उनके पास के बैठने-उठने वालों को भी मालूम हो गया कि राजा भोज कालिदास से उदासीनता करने लगे हैं। उन्होंने कहा —

गुणी मनुष्यों में किसी तरह की बुराई देख कर भी बुरे

से प्रीति रखने वाले मनुष्य को दुख नहीं मानना चाहिए। गुणग्राही को चाहिए कि वह उसके गुणों का ख़याल करे; बुराई कभी न देखे। जिस तरह कलंकयुक्त होने पर भी चन्द्रमा को समस्त संसार प्रीतिपूर्वक ही देखता है।

इस तरह समझाने बुझाने पर भी राजा भोज कालिदास की ओर से सन्तुष्ट न हुए; उनकी पूर्व की सी प्रीति न हुई। होते होते कालिदास को भी राजा का मतलब मालूम हो गया। वह भी समझ गया कि राजा मुझ से नाराज़ रहते हैं।

एक दिन कालिदास ने तराज़ू का बहाना करके राजा के सामने यह श्लोक पढ़ाः—

प्राप्य प्रमाणपदवीं को नामास्ते तुलेऽवलेपस्ते ।
नयसि गरिष्ठमधस्तात्तदितरमुच्चैस्तरां कुरुषे ॥

हे तराज़ू प्रमाण—माप—(मान) का दरजा पाकर तुझे घमंड क्यों है ? तू गरिष्ठ अर्थात् बड़े को (भारी को) नीचे कर देती है; तेरा वज़नी पलरा नीचे हो जाता है और हलका ऊपर को उठ जाता है।

इसके बाद दूसरा श्लोक कहाः—

यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात्
स्वदेशरागेण हि याति खेदम् ।
तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ॥

अर्थात् जिसकी सब जगह गति है, जो सब जगह जा आ सकता है वह अपने देश में प्रीति करके दुख क्यो पाता है। यह कुआ हमारे पिता का बनवाया हुआ है— इस तरह कह

कर कायर मनुष्य उसका खारी पानी पीते रहते हैं। बुद्धिमान् ऐसा काम कभी नहीं कर सकता।

इसके बाद कालिदास अच्छी तरह समझ गया कि राजा हम से ज़रूर नाराज़ हैं। हमारा तिरस्कार करते हैं। यह विचार कर उदास होकर वह अपने घर चला गया। क्योंकि—

तिरस्कार करने से जिसका प्रेम घट जाता है उस प्रेम को फिर पूरा कौन कर सकता है? जो मोती एक बार टूट गया वह फिर लाख का लेप करने से जुड़ नहीं सकता।

परस्पर प्रेम न रहने से और कालिदास की उदासीनता जान कर राजा भोज के मन में भी दुख हुआ। वह भी उदासीन रहने लगा।

एक दिन रानी लीलावती ने राजा भोज को उदासीन देख कर पूछा कि आप उदास क्यों रहते हैं? भोज ने अपना और कालिदाससम्बन्धी सब हाल कह सुनाया। हाल सुनते ही रानी समझ गई कि राजा कालिदास का तिरस्कार करते हैं। उसने कहा—हे देव! प्राणनाथ! आप सर्वज्ञ हैं; आप सब कुछ जानते-समझते हैं तोभी सुनिए.—

स्नेहो हि वरमघटितो न वरं सञ्जातविघटितस्नेहः ।
हतनयनो हि विषादी न विषादी भवति जात्यन्धः ।

कालिदास सरस्वती का अवतार है। सब तरह से इस से प्रेम करो; ऐसा उपाय करो जिससे यह फिर आप से प्रेम करने लगे। देखो—

चन्द्रमा दोषाकर—क्षपाकर—कुटिल है अर्थात् टेढ़ा है, वह कलंक वाला भी है; वह अपने मित्र के अन्त समय अर्थात् सूर्य के छिप जाने पर उदय होता है। ऐसा होते हुए भी वह शिवजी का प्रिय है। अपने शरण में अर्थात् अपने पास रहने वालों के गुणदोषों का विचार न करना चाहिए।

रानी लीलावती के समझाने से भोज की बुद्धि ने पलटा खाया। उसने कहा कि तुम जो कुछ कहती हो सब ठीक है। मैं कल सवेरे ही कालिदास को ख़ुश करने का उपाय करूँगा।

प्रातःकाल होते ही राजा अपने ज़रूरी कामों से निपट कर सभा में गये। उस वक़्त पण्डित, कवि और गवैये आदि सब लोग सभा में आये पर कवि कालिदास न आये। उनको न देख कर राजा ने अपने एक नौकर को हुक्म दिया कि कवि कालिदास को बुला कर लाओ। वह गया और कालिदास को प्रणाम करके कहने लगा कि हे कवीन्द्र! राजा भोज आपको बुलाते हैं। उनको चिन्ता हुई कि राजा ने कई दिन हुए तब तो मेरा तिरस्कार किया था अब वह मुझे सवेरे ही क्यों बुलाते हैं। सच है —

राजा की सभा में जो जो मनुष्य उसका परम प्रिय है; राजा का जिस पर प्रेम है पास रहने वाले उसी उसी मनुष्य को उखाड़ने का प्रयत्न करते हैं। वे चाहते हैं कि राजा के परम प्रिय मनुष्य न रहने पावें।

राजा भोज की मेरे साथ बड़ी प्रीति थी इसी से मेरा मान भी बढ़ता जाता था वह कुटिल मनुष्यों को असह्य हुआ। इसी से ईर्ष्या करके लोगों ने मुझ में और राजा में वैर का अंकुर बो दिया।

जो राजा ज्ञानी नहीं होता, जो अच्छी तरह समझता नहीं वह चतुर मन्त्रियों के वश में रहता है। और जिस राजा के पास दुष्ट मनुष्यों का ज़ोर होता है वहाँ किसी बात के लिए सज्जनों को अवसर कैसे मिल सकता है। वहाँ सज्जन किसी सूरत में नहीं रह सकता।

इस तरह विचार करते हुए कालिदास सभा में आये उनको आता हुआ देख कर राजा को बड़ी ख़ुशी हुई। वे आसन से उठ खड़े हुए और कहा कि सुकवे! मेरे प्रियतम! आपने आज इतनी देर क्यों की? इस तरह कहते हुए भोज आगे बढ़े अर्थात् उनकी पेशवाई की। राजा को देख कर सभा में जितने मनुष्य बैठे थे वे भी सब उठ खड़े हुए। और यह हाल देख कर उनको आश्चर्य हुआ। जो लोग कालिदास के विरोधी थे उनको तो बड़ाही दुख हुआ।

राजा कालिदास के हाथ में हाथ डाल कर अपने सिंहासन की जगह लिवा लाये। उनको उसी सिंहासन पर बिठा दिया और उनकी आज्ञा पाकर ख़ुद भी वहीं बैठ गये।

इस तरह कालिदास की प्रतिष्ठा होते हुए देख कर कुछ लोगों के मन में बड़ी ईर्ष्या हुई। वे कालिदास की प्रतिष्ठा न देख सके। वे परस्पर मिल कर ऐसा उपाय सोचने लगे जिससे राजा में और कालिदास में फिर भी अनबन हो जावे।

होते होते उन लोगों ने एक ऐसा निकृष्ट उपाय सोचा जिससे राजा में और कालिदास में अनबन करा ही दी। राजा उनसे बड़े नाराज़ हो गये। यहाँ तक कि उन्होंने कालिदास से कह दिया कि तुम हमारे राज्य में न रहो; कहीं बाहर चले जाओ। साथ ही यह भी कह दिया कि हम जवाब कुछ नहीं चाहते।

कालिदास वहाँ से चल दिये और विचारने लगे :—

अघटितघटितं घटयति सुघटितघटितानि दुर्घटीकुरुते।
विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति॥

अर्थात् अघटितघटनापटु भगवान् अनहोनी बातों को होनहार कर देता है और होनहार बातों को अनहोनी कर देता है। मनुष्य जिस बात को कभी नहीं सोचता या विचारता कि यह बात होगी वही सामने आजाती है।

मालूम होता है यह सब कृत्य मेरे दुश्मनों का किया हुआ है। सच है—थोड़ा सार रखने वाले बहुतों का इकट्ठा होना भी मज़बूत बन जाता है। तिनकों से रस्सी बनाई जाती है फिर उसी रस्सी से हाथी बाँधे जाते हैं।

जब कालिदास देश से निकल गया तब रानी लीलावती ने भी सुना। उसने राजा से कहा—हे देव! कवि कालिदास के साथ तो आपकी बड़ी मित्रता थी। अब उनसे क्यों बिगड़ गई? ऐसा क्या सबब हुआ जिससे आपने उनको देश से भी निकाल दिया? देखो—

जिस तरह ईख के आगे के हिस्से के नीचे क्रमपूर्वक रस बढ़ता जाता है, गन्ने के नीचे के हिस्से में रस अधिक होता

जाता है उसी तरह सज्जनों की प्रीति बढ़ती जाती है। दुष्ट मनुष्यों की प्रीति इसके विपरीत होती है अर्थात् घटती जाती है।

शोकरूपी शत्रु से रक्षा करनेवाला, प्रीति और विश्वास का पात्र ऐसा 'मित्र' यह दो अक्षर का शब्दरूपी रत्न किसने बनाया है! मतलब यह कि यह 'मित्र' रूपी रत्न सब रत्नों से बड़ा है।

लीलावती की बातें सुन कर राजा भोज, कालिदास के विरुद्ध जो कुछ बातें जानता था वे सब उसने कह सुनाईं। राजा की बातें सुन कर लीलावती को बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ। उसने ईश्वर को साक्षिरूप बना कर कालिदास की ओर से राजा का मन बिलकुल शुद्ध कर दिया। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि कालिदास निर्दोष हैं।

अब भोज के मन में बड़ी चिन्ता हुई। वे रात-दिन मग्न रहने लगे। न किसी से बोलते और न किसी से बात-चीत करते। वे रात-दिन विलाप करते हुए कहते थे कि मुझमें लज्जा क्या है, मुझमें चतुराई क्या है, मुझमें गंभीरपन क्या है अर्थात् कुछ नहीं। वे कालिदास के लिए पछताते हुए कहते थे—हा कवियों के मुकट के मणिरूप कालिदास! हा मेरे प्राण-प्रिय! मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अनर्थ किया। जो बात तुमसे कभी भी न कहनी चाहिए थी, सो कही। मैंने तुम्हारा बड़ा अनादर किया, तुम सर्वथा निर्दोष हो और मैं कठोर हूँ; मैं ही अपराधी हूँ, जो तुमको मैंने इतना कष्ट दिया। इस

तरह कालिदास के लिए विलाप करते हुए वे बड़े दुखी रहने लगे।

राजा भोज जब अपनी सभा में जाते तब विना कालिदास के सभा में कुछ भी न मालूम होता था। उन्हें वह सभा ऐसी मालूम होती थी जैसे विना चन्द्रमा के रात हो। उस सभा में ऐसा एक भी मनुष्य न था जिसकी कविता राजा भोज के मन को ख़ुश करनेवाली हो।

एक दिन राजा भोज बैठे हुए थे। रात का समय था। चाँदनी खिल रही थी। उस चन्द्रिका को देख कर राजा अपने मन में बड़े ख़ुश हुए। उसी समय रानी लीलावती के मुँह के समान प्रकाशमान चन्द्रमा को देख कर उन्होंने एक आधी कविता की जिसका मतलब यह है कि:—"यह चन्द्रमा मेरी रानी लीलावती के मुँहरूपी चन्द्रमा की बराबरी करता है" इतना कह कर वे सो गये। जब सवेरा हुआ तब वे सोते से उठे और उठकर, नित्य कर्म करने के बाद अपनी सभा में गये। वहाँ जाकर सब कवियों को बुलाया और उनसे कहा:—

तुलण अणु अणुसरइ ग्लौसो मुहचन्दस्स खु एदाए।

यह मेरी समस्या है। यदि आप इसको पूरा करदें तो अच्छा है। अगर यह समस्या पूरी न हुई तो आप लोग मेरे देश में नहीं रह सकते। या तो समस्या पूरी कीजिए या देश छोड़ कर चले जाइए।

उस वक़ तो सब कवि अपने अपने घर चले गये। फिर सब कई दिन तक विचार करते रहे पर किसी ने भी समस्या

न बन सकी। जब एक से भी पूरी कविता न बन सकी और कई दिन बीत गये तब वे इकट्ठे होकर सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। अन्त में यह निश्चय हुआ कि राजा के पास बाण पण्डित को भेज कर कुछ अवधि माँगनी चाहिए। ऐसा ही हुआ। बाण पण्डित राजा के पास गया और उनसे कहा कि हे राजन्! सब कवियों ने मिलकर मुझे आपकी सेवा में भेजा है कि आप समस्या पूरी करने के लिए आठ दिन की अवधि दीजिए। राजा ने कहा अच्छा, अगर आठ दिन में समस्या पूरी न हुई तो सब कवियों को देश छोड़ देना होगा। बाण कवि ने आकर राजा की स्वीकृति सब कवियों को सुना दी। इसके बाद सब अपने अपने घर चले गये। धीरे धीरे आठ दिन भी बीत गये। पर कविता कोई भी पूरी न कर सका। आठवें दिन की रात को सब कवि इकट्ठे हुए। उस वक्त बाण कवि ने कहा कि आपही लोगों ने अपने घमंड से, राजसम्मान के घमंड से और कुछ विद्या के घमंड से कवि-शिरोमणि कालिदास को यहाँ से निकलवा दिया। साधारण-रूप से आप लोग सभी कवि और पण्डित हैं। साधारण कविता सब कर सकते हैं पर विषम—कठिन—कविता करने में तो वही एक कवि कालिदास समर्थ हैं। उनके बिना कठिन समस्या की पूर्ति कौन कर सकता है। उनको तो आपने निकाल दिया। अब आप लोगों का क्या बड़प्पन रह गया। यदि इस वक्त यहाँ कालिदास होते तो यह आपत्ति क्यों भोगनी पड़ती। उनके रहते क्यों यह देश छोड़ना पड़ता। अब आप लोगों को उनके निकलवाने का मज़ा मिला है

सच तो यह है कि जिनकी संसार में प्रतिष्ठा है, जो विद्वान् हैं, जो आदर-सत्कार के योग्य हैं उनके साथ जो ईर्ष्या-द्वेष करता है उसका कुल ही नष्ट हो जाता है।

इसके बाद सब कवि बड़े दुखी हुए। कालिदास के लिए सब विलाप करने लगे। फिर सब शान्त होकर कहने लगे कि आज आख़िरी दिन है; कालिदास के बिना कोई भी समस्या पूरी नहीं कर सकता। क्योंकिः—

योद्धाओं की युद्धभूमि में और कवियों के कविमंडल में जीत या हार दो ही घड़ी में मालूम हो जाती है।

अब अगर आप लोगों की राय हो तो आज ही आधी रात के समय अपना अपना असबाब लेकर चुपके से निकल चलो। अब इस देश को छोड़ देना ही अच्छा है और अगर अपने आप न छोड़ोगे तो प्रातःकाल होते ही राजकर्मचारी हमको तथा हमारे बाल-बच्चों को यहाँ से निकाल देंगे।

इस तरह सोच विचार कर वे सब कवि अपने अपने घर गये और सब सामान साथ ले गाड़ियों पर लाद कर वहाँ से चल दिये।

जब ये सब कवि रास्ते में जा रहे थे तब कालिदास भी कहीं रास्ते में रहते थे। उनको इनकी आवाज़ सुनाई दी। वे जान गये कि ये सब कवि लोग कहीं जा रहे हैं। उन्होने एक मनुष्य भेजा कि देखो तो ये लोग कौन जा रहे हैं। उसने आकर कहा कि ये राजा भोज के कवि हैं।

सच है तालाब की जो शोभा एक राजहंस से होती है

वह, उसके चारों ओर रहने वाले हजार वगलों से नहीं हो सकती ।

अब कालिदास ने विचार किया कि इन जाते हुए पण्डितों की रक्षा ज़रूर करनी चाहिए । क्योंकि जो मनुष्य दुखी मनुष्यों की रक्षा नहीं करता उसके बल से कुछ नहीं, जो धन अतिथि को नहीं दिया जाता वह धन धन नहीं । जो अपनी भलाई करने वाली नहीं वह क्रिया कुछ भी नहीं । जो सज्जन मनुष्यों से द्वेष रक्खे उसका जीवन व्यर्थ ही है ।

यह विचार कर कालिदास ने अपना वेष बदल लिया और हे तलवार लेकर वहाँ से चल दिये । आध कोस के फ़ासले पर वे सब जाते हुए मिले । ये उनके सामने जा कर खड़े हुए और उनको आशीर्वाद देकर कहा—

आप विद्या में समुद्ररूप हैं, आप लोग राजा भोज की सभा में वृहस्पति की तरह बड़ा महत्त्व पाने वाले हैं । आप सब इकट्ठे होकर कहाँ जाना चाहते हैं ? कहिए, आप लोग प्रसन्न तो हैं । राजा भोज तो आनन्दपूर्वक हैं । इनके बाद कालिदास ने कहा कि मैं राजा भोज से धन पाने की इच्छा से उनके दर्शन करने के लिए काशी से आया हूँ । कालिदास के धन पाने की इच्छा सुनकर सब कवि हँसने लगे और वहाँ से आगे बढ़ने लगे । उन लोगों में एक कवि बड़ा समझदार था । वह खड़ा होकर कहने लगा कि आप हम लोगों की बात पीछे से भी सुनेंगे इस लिए मैं अभी बतला देना उचित समझता हूँ । बात यह कि राजा भोज ने एक समस्या हम लोगों को पूरी करने के लिए दी थी । वह समस्या हम में से कोई भी

पूरी न कर सका, इसलिए राजा भोज नाराज़ हो गये और उन्होंने अपने देश से हमको निकाल दिया। कालिदास तो बड़े चतुर थे। उन्होंने कहा कि वह समस्या क्या थी सो तो सुनाओ। उस पण्डित ने समस्या सुना दी। समस्या सुनते ही कालिदास उसका सारा मतलब समझ गये। उन्होंने कहा कि राजा भोज ने चन्द्रमा का पूर्णमंडल देख कर यह गूढ़ समस्या कही है। इसके आगे का हिस्सा इस तरह होना चाहिए:—

अणु इदि वण्णयदि कहं अणकिदि तस्स प्पडिपदि चंदस्स।

मतलब यह कि उस प्रतिपदा के चन्द्रमा की और उस मुखरूपी चन्द्रमा की बराबरी किस तरह हो सकती है अर्थात् मुँह तो सदा पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य है और चन्द्रमा पड़वा के दिन एक ही कला वाला रह जाता है फिर बराबरी किस तरह हो सकती है?

इस समस्यापूर्ति को सुनते ही सब कवि विस्मित हो गये। कालिदास तो समस्या कह कर उन सब को प्रणाम कर वहाँ से चल दिये। वे पण्डित आपस में कहने लगे कि यह मनुष्य तो साक्षात् सरस्वतीरूप मालूम होता है। मालूम होता है यह हमारी रक्षा के लिए ही आया था।

अब वे सब वहाँ से अपने अपने घर को लौट आये। सब ने सलाह की कि सवेरा होते ही राजा भोज की सभा में चलना चाहिए और यह समस्या उनको सुनानी चाहिए। उन्होंने वैसा ही किया। सवेरा होते ही सब इकट्ठे होकर सभा में गये और राजा को आशीर्वाद देकर बैठ गये। फिर बाण

कवि ने राजा से कहा कि हे सर्वज्ञ ! आपने जो समस्या कही थी उसका पूरा पूरा मतलब तो ईश्वर जानता होगा; हम ग़रीब क्या जान सकते हैं। फिर भी कुछ कहा जाता है। उसने पूरी की हुई समस्या सुना दी। समस्या को सुनते ही राजा को सन्देह होगया कि यह समस्या इन लोगों की बनाई हुई नहीं है। मालूम होता है आस पास कहीं कालिदास रहते हैं। उस वक़् तो राजा ने बाण पण्डित को पन्द्रह लाख रुपये दे दिये और सब विद्वानों को वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी। वे लोग वहाँ से चले गये। फिर अपने द्वारपाल को आज्ञा दी कि जो कोई पण्डित आवे उसे मेरे पास पहुँचाओ। उन कवियों में से एक कवि राजा से मिला और मिलकर कालिदास की समस्यापूर्ति का सारा हाल कह सुनाया। राजा ने विचार किया कि मेरे डर से कालिदास चारण का वेष बना कर मेरे ही देश में रहता है। उसने उसी समय अपने नौकरों को आज्ञा दी कि जिस जगह पण्डितों से कवि कालिदास मिले थे वहीं जाओ और उनको खोजो। राजा भोज और नौकर घोड़ों पर सवार होकर कालिदास को खोजते हुए वहीं पहुँचे जहाँ कालिदास रहते थे। वहीं कालिदास मिल गये। उनको देखते ही राजा उनके चरणों में गिर कर कहने लगे:—

हे कवे ! चलते हुए, ठहरते हुए, जागते हुए और सोते हुए मेरा मन कभी तुम से दूर न हो।

भोज की बातें सुन कर कालिदास को बड़ी लज्जा

आई। वे नीचे को मुँह करके खड़े हो गये। राजा ने उनकी ओर देखते हुए कहा:—

हे कलाओं के स्थान कालिदास! राजमार्ग में जाते हुए मुझको आपने दास की तरह अपने पास बुला लिया तो इसमें लज्जा की कौन सी बात है। मैं तो आपका दास हूँ।

कालिदास के मिल जाने से राजा को बड़ी ख़ुशी हुई। इस ख़ुशी में उन्होंने एक एक ब्राह्मण को एक एक लाख रुपये दिये। फिर कालिदास को अपने घोड़े पर सवार करा कर राजा अपने घर को लौट आये।

विद्वान् हो तो कालिदास के समान हो। देखिए, कालिदास की विद्वत्ता कैसी थी कि अन्त में उनकी वैसी ही फिर प्रतिष्ठा हुई जैसी पहले होती थी।



उन्नीसवाँ परिच्छेद

विलोचन कवि का कुटुम्ब

एक दिन राजा भोज की सभा में विलोचन नामक कवि अपने कुटुम्ब के साथ आया। वह वहाँ आकर चुपचाप खड़ा हो गया। उसको देख कर राजा भोज ने कहाः—

"बड़े आदमियों के कामों की सिद्धि शरीर ही में हुआ करती है; सांसारिक सामान में नहीं।"

वह कवि पूरा कवि तो था ही, पर चतुर भी अव्वल दरजे का था। राजा की बात सुनकर वह श्लोक बना कर फ़ौरन पढने लगाः—

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनो-
वने वासः कन्दादिकमशनमेवंविधगुणः।
अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत कराम्भोजकुहरे
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

जिसका जन्म तो घड़े से हुआ है, जिसके कुटुम्बी हरिण आदि हैं अर्थात् हरिण आदि को ही जो कुटुम्बी मानता है,

जिसके कपड़े भोज-पत्र के हैं, जो सदा वन में रहता है, जो कन्दमूल खाकर ही अपना निर्वाह करता है ऐसे गुणों वाला अगस्त्य मुनि समुद्र को सोख गया। इसलिए महान् पुरुषों के कामों की सिद्धि शरीर ही में होती है सांसारिक सामान से नहीं।

चतुरता से भरे हुए कवि का श्लोक सुनकर राजा भोज बड़े .खुश हुए। उन्होंने .खुश होकर कवि का अच्छी तरह आदर-सत्कार किया और उनको बहुमूल्यवान् रत्न आदि देकर सन्तुष्ट किया।

विलोचन कवि के साथ उनकी स्त्री भी थी। वह भी बड़ी विदुषी थी। उसे देख कर राजा ने कहा कि हे मातः, आप भी कुछ कहिए। वह भी तत्काल कहने लगा:—

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगा
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि।
रविर्यात्येवांतं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

अर्थात् सूर्य के रथ का पहिया एक है, पर उसके घोड़े सात हैं, वे भी साँपों से बन्धे हुए हैं। उसका रास्ता आकाश में है परन्तु उसका सारथि पंगुल है। ऐसा होते हुए भी सूर्य रोज़ समस्त आकाश में घूम जाता है। इससे मालूम हुआ कि जो बड़े होते हैं उनके कामों की सिद्धि शरीर ही में होती है, सांसारिक सामानो से नहीं।

राजा भोज स्त्री की कविता सुन कर और भी अधिक

.खुश हुए और उन्होंने उसको भी आदरपूर्वक मूल्यवान् रत्न आदि देकर .खुश किया।

कवि के साथ उसका पुत्र भी था। वह भी बड़ा विद्वान् था। राजा भोज ने जब उसे देखा तब उससे भी कहा कि हे बटुक! तुम भी कुछ सुनाओ। उसने भी तत्काल ही कहाः—

> विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
> र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
> पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधीद्राक्षसकुलं
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।

मतलब यह कि लंका का विजय करने के लिए मार्ग में समुद्र पड़ता है वह अपने पैरों से तैर कर पार होने योग्य था। वहाँ लंका में पुलस्त्य ऋषि का पुत्र रावण शत्रु था। वहाँ संग्रामभूमि में सहायता करने वाले केवल बन्दर ही थे और रामचन्द्रजी पैदल चलनेवाले मनुष्य ही थे. इस प्रकार युद्ध का सामान अच्छी तरह न होते हुए भी कठिन बहुत ही काम होने पर भी रामचन्द्रजी ने वहाँ के समस्त राक्षस-कुल को मार गिराया और नष्ट कर दिया। इससे सिद्ध हुआ कि बड़े मनुष्यों की सिद्धियाँ शरीर ही से होती हैं सामान से नहीं।

कवि के पुत्र का भी श्लोक सुन कर राजा भोज बड़े .खुश हुआ और उसे भी बहुमूल्य रत्न आदि देकर सन्तुष्ट किया।

कवि के कुटुम्ब के साथ उसके पुत्र की स्त्री भी साथ

थी। उसकी उम्र कम थी और लज्जावती भी अधिक थी। उसे देख कर राजा भोज ने उससे भी कहा कि हे मातः, आप भी कुछ सुनाइए, वह भी ख़ूब पढ़ी-लिखी थी। उसने भी तत्काल कहाः—

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशां
दृशां कोणो बाणः सुहृदपि जडात्मा हिमकरः।
स्वयं चैको नङ्गः सकलभुवनं व्याकुलयति
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

अर्थात् जिसका फूल-रूप तो धनुष है, भौंरा-रूप जिसकी प्रत्यञ्चा है, चञ्चल नेत्रवाली स्त्रियों के नेत्र-कोण ही जिसके बाण हैं, जिसका मित्र जड़ चन्द्रमा है और वह ख़ुद अंगरहित है अर्थात् उसके अंग कोई भी नहीं है, ऐसा केवल कामदेव ही समस्त संसार को व्याकुल कर देता है अर्थात् अपने वश में किये हुए है। इससे मालूम हुआ कि बड़ों के कामों की सिद्धियाँ उनके प्रताप से ही हो जाती हैं। उनकी सिद्धियों के लिए सांसारिक सामान की ज़रूरत नहीं।

कवि की पुत्रवधू की कविता सुन कर उस समय सभा में जितने मनुष्य बैठे हुए थे वे तथा राजा सभी बड़े चकित हो गये। राजा भोज ने प्रसन्न होकर उसको अपनी रानी लीलावती के रत्नजटित बहुत आभूषण दिये और उसकी बड़ी प्रशंसा की।

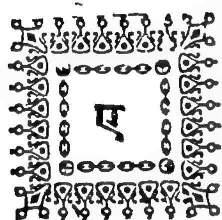
विलोचन कवि तथा उसके कुटुम्ब को अत्यन्त विद्वान् समझ कर राजा भोज ने उन सबको अपने राज्य में रहने के लिए जगह दिला दी। वे सब वहीं रहने लगे।

वह समय धन्य था जब कि इस देश में विद्या का इतना अधिक प्रचार था। सब लोग ऐसे विद्वान् हुआ करते थे। एक घर में यदि सभी विद्वान् हों तभी आनन्द होता है। यदि कुछ विद्वान् हुए और कुछ मूर्ख, तो अच्छा सुख नहीं मिलता।



बीसवाँ परिच्छेद

कुम्हार की उदारता



एक दिन एक कुम्हारी राजा भोज के यहाँ आई और द्वारपाल से कहने लगी कि मैं राजा के दर्शन करना चाहती हूँ। द्वार-पाल ने कहा—तेरा क्या काम है, राजा से क्यों मिलना चाहती है? उसने उत्तर दिया कि मैं तुमको कदापि न बतलाऊँगी; वह काम राजा से ही कहने का है। द्वारपाल सभा में गया और राजा भोज से कहने लगा कि राजन्! एक कुम्हारी आपके दर्शन करना चाहती है। मैंने उससे पूछा कि तेरा क्या काम है? उसने काम मुझे नहीं बतलाया, आपसे ही निवेदन करना चाहती है। राजा ने कहा, अच्छा उसे भेजो। कुम्हारी आई और नमस्कार करके कहने लगीः—

हे राजन्! मिट्टी खोदते हुए मेरे स्वामी को एक ख़ज़ाना मिला है। वह इस वक्त वहीं बैठा हुआ उसकी रक्षा कर रहा है, और मैं आपसे निवेदन करने के लिए आई हूँ।

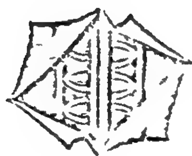
ख़ज़ाने का हाल सुन कर राजा को आश्चर्य हुआ।

उसने अपने नौकरों को भेजा कि वहाँ जाकर कलश ले आओ। नौकर ले आये। राजा ने कलश को देखा तो उसके भीतर मणि-मोतियों से युक्त द्रव्य पाया। राजा ने कुम्हार से पूछा कि यह क्या है? कुम्हार ने कहाः—

राजचन्द्रं समालोक्य त्वां तु भूतलमागतम्।
रत्नश्रेणिमिषान्मन्ये नक्षत्राण्यभ्युपागमन्॥

अर्थात् हे राजन्! मेरी समझ में तो यह आता है कि आपको, राजारूप चन्द्रमा को पृथिवी पर आया हुआ देख कर रत्नों के बहाने नक्षत्रों की यह पंक्ति आपको प्राप्त हुई है।

राजा कुम्हार के मुँह से यह उत्तम श्लोक सुन कर बड़ा चकित हुआ। उसने ख़ुश होकर वह सारा ख़ज़ाना कुम्हार को दे दिया।



इक्कीसवाँ परिच्छेद

राज्य का दान



एक दिन द्वारपाल आकर राजा से कहने लगा कि महाकवि कवि-शेखर नामक द्वार पर खड़ा है और आपसे मिलना चाहता है। राजा ने कहा कि अच्छा, भेजो। कवि आया और आकर आशीर्वाद दिया। फिर कहने लगाः—

राजन्दौवारिकादेव प्राप्तवानस्मि वारणम्।
मदवारणमिच्छामि त्वत्तोऽहं जगतीपते!॥

हे राजन्! वारण (रुकावट) तो मुझे द्वारपाल से ही मिल चुका है अर्थात् द्वारपाल ने आगे बढ़ने से मुझे रोका था। हे जगतीपते! अब मदवारण (मस्त हाथी) की तुमसे इच्छा करता हूँ।

उस वक़्त राजा भोज पूर्व को मुँह किये हुए बैठे थे। वे कवि से ख़ुश हो गये और पूर्व देश का सम्पूर्ण राज्य कवि को देने का संकल्प कर लिया। इसलिए वे दक्षिण की ओर मुँह करके बैठ गये। कवि विचारने लगा कि यह क्या बात है। राजा ने तो मुँह फेर लिया। क्या मुझसे नाराज़ हो गये।

वह दक्षिण की ओर, अर्थात् राजा जिस ओर मुँह किये हुए बैठे थे जाकर पढ़ने लगा कि:—

> अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कथम्।
> मार्गणौघः समायाति गुणो याति दिगन्तरम्॥

हे राजन्! यह अपूर्व धनुर्विद्या तुमने कहाँ से सीखी जो बाणों का समूह तो पास आता है और गुण अर्थात् डोरी आकाश को जाती है।

राजा कवि की इस बात से भी बड़े ख़ुश हुए। उन्होंने उस कवि को दक्षिण देश का भी राज्य दे देने का विचार कर लिया और ख़ुद पश्चिम की ओर मुँह करके बैठ गये। कवि उनका मतलब फिर भी न समझा इसलिए पश्चिम दिशा में उनके सामने जाकर कहने लगा—

> सर्वज्ञ इति लोकोऽयं भवन्तं भाषते नृप।
> पदमेकं न जानीषे वक्तुं नास्तीति याचके॥

हे राजन्! लोग आपको सर्वज्ञ कहते हैं यह बिल्कुल झूठ है क्योंकि आप तो माँगनेवाले के सामने 'नहीं' यह एक शब्द भी नहीं कह सकते।

इसके बाद ख़ुश होकर राजा भोज ने पश्चिम देश का राज्य भी कवि को देने का विचार कर लिया। इसलिए वे उत्तर की ओर मुँह फेर कर बैठ गये। कवि बेचारा अब तक निराश ही रहा। उसने राजा का मतलब अब तक न समझ पाया। वह उत्तर की ओर भी जाकर उनके सामने कहने लगा:—

सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या त्वं कथ्यसे बुधैः।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः॥

हे राजन्! मैंने सुना था कि आप सदा सबको सब कुछ देनेवाले हैं यह बिलकुल झूठ है क्योंकि शत्रु तुम्हारी पीठ को नहीं पाता और पर-स्त्री तुम्हारे वक्षःस्थल को प्राप्त नहीं होती। अर्थात् तुमने शत्रुओं को कभी पीठ पीछे नहीं किया और तुम पर-स्त्री से प्रेम नहीं करते।

कवि की ये बातें सुन कर राजा भोज और भी अधिक ख़ुश हुए और उत्तर देश का राज्य भी कवि को दिया हुआ मान उठ कर खड़े हो गये।

कवि अब तक उनका मतलब न समझा इससे वह फिर कहने लगाः—

राजन्कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति।
अभाग्यच्छत्रसंच्छन्ने मयि नायान्ति बिन्दवः॥

हे राजन्! आप सब जगह सोने की वर्षा करते हैं पर मेरे ऊपर अभाग्य-रूपी छत्र है, वहाँ तक एक बूँद भी नहीं पहुँचती।

इसके बाद राजा रनिवास को चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी रानी लीलावती से कहा कि हे देवि! आज मैंने अपना सारा राज्य एक कवि को दे डाला। अब तू मेरे साथ तपोवन को चल। इसी मौक़े पर वह कवि निराश हुआ दर्वाज़े पर आगया। वहाँ राजा का मन्त्री बुद्धिसागर बैठा हुआ था। उसने उससे पूछा, हे कवि! राजा ने तुमको क्या दिया? कवि ने निराश होकर कहा कि कुछ भी नहीं

दिया । मन्त्री ने कहा—अच्छा, वे श्लोक तो पढ़ो जो तुमने राजा को सुनाये थे । कवि ने अपने सुनाये हुए श्लोक फिर सुना दिये । मन्त्री ने कहा—तुमको राजा ने बहुत धन दिया है । अगर तुम उसे बेचना चाहो तो एक करोड़ में बेच दो । कवि ने कहा—बहुत अच्छा । कवि को एक करोड़ रुपया देकर मन्त्री ने चलता कर दिया । फिर वह मन्त्री राजा भोज के पास चला गया । वहाँ राजा ने बुद्धिसागर को देखते ही कहा—हे मन्त्रि ! आज मैंने अपना सारा राज्य एक कवि को दे दिया है । अब मैं रानियों सहित तपोवन को जाता हूँ । यदि तुम लोगों में से कोई साथ चलना चाहे तो चल सकता है । बुद्धिसागर ने कहा कि हे राजन् ! उक्त कवि ने सारा राज्य मेरे हाथ एक करोड़ रुपये में बेच दिया है । रुपया मैंने आपके ख़ज़ाने में से दिया है । कवि रुपये लेकर चला गया । अब सारा राज्य आपका ही है । आप उसका आनन्द-पूर्वक भोग कीजिए ।

राजा प्रधान मन्त्री बुद्धिसागर की चतुरता पर बड़ा ख़ुश हुआ और फिर वे दोनों और भी अधिक मेल-मिलाप से रहने लगे ।



बाईसवाँ परिच्छेद

कवि मल्लिनाथ

एक दिन जब राजा भोज की सभा भरी हुई थी तब द्वारपाल आकर कहने लगा कि हे राजन्! दक्षिण देश से आये हुए एक मल्लिनाथ कवि द्वार पर खड़े हैं। वे सिर्फ़ एक लंगोट पहने हुए हैं और कोई कपड़ा उनके पास नहीं है। राजा ने कहा कि यहाँ भेजो। कवि आये और राजा को कल्याणरूप आशीर्वाद देकर बैठ गये। बैठते ही कवि कहने लगे :—

नागो भाति मदेन खं जलधरैः पूर्णेन्दुना शर्वरी
शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम्।
वाणी व्याकरणेन हंसमिथुनैर्नद्यः सभा पण्डितैः
सत्पुत्रेण कुलं त्वया वसुमती लोकत्रयं भानुना॥

अर्थात् हाथी की शोभा मद से, आकाश की शोभा मेघों से, रात की शोभा चाँदनी से, स्त्री की शोभा शील से, घोड़े की शोभा जल्दी चलने से, मन्दिर की शोभा नित्य उत्सव होने से, वाणी की शोभा व्याकरण से, नदी की शोभा हंसों के जोड़े से, सभा की शोभा पण्डितों से, कुल की शोभा लड़के

के अच्छे होने से, पृथिवी की शोभा आप से और तीनों लोकों की शोभा सूर्य से होती है।

इसके बाद राजा ने कहा—हे विद्वन्! आपका मतलब क्या है सो बतलाइए? कवि ने कहाः—

अम्बा कुप्यति न मया न स्नुषया सापि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया वद राजन्कस्य दोषोऽयम्॥

मेरी माता ग़ुस्सा करती है पर मुझ से नहीं, और न पुत्रवधू से ही। पुत्रवधू भी क्रोध करती है पर मुझ से या मेरी माता से नहीं। मैं भी जब कभी क्रोध करता हूँ तब न माता से न पुत्र-वधू से ही। हे राजन्! अब आप ही बतलाइए कि ग़ुस्सा करने में किसका दोष है!

कवि का मतलब राजा समझ गया। उसने जान लिया कि यह सब दोष ग़रीबी का है; फिर उसे ख़ूब धन देकर पूर्ण-मनोरथ किया।





माघ कवि



स तरह राजा भोज विद्वत्ता में, दान करने में और गुणग्राही होने में संसार में प्रतिष्ठित हुए उसी तरह माघ पण्डित भी विद्वत्ता तथा असाधारण दान करने में संसार में विख्यात थे। यही नहीं बलिक किसी किसी बात में माघ पण्डित भोज से भी बढ़े-चढ़े थे। माघ का यह नियम था कि माँगने वाला कोई भी द्वार से ख़ाली हाथ न लौटे। वे दान करने में अभूतपूर्व हुए। वे इसी दान के कारण संसार भर में प्रतिष्ठित हो गये।

एक दिन राजा भोज ने भी माघ पण्डित की बड़ी प्रशंसा सुनी। इसने भी विचार किया कि माघ का अवश्य दर्शन करना चाहिए। इसने अपने अच्छे समझदार नौकरों को माघ कवि के घर पर भेजा और उनको आदरपूर्वक अपने नगर में बुलवाया। उनके आने पर राजा भोज ने उनका अच्छी तरह आदर-सत्कार किया और उनके रहने के लिए एक उत्तम मकान बतलाया। यही नहीं किन्तु उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए चतुर नौकर नियत कर दिये जिससे उनको किसी तरह का कष्ट न हो।

माघ कवि बहुत दिन तक धारा नगरी में रहे और उन्होंने

आनन्दपूर्वक समय विताया। जब रहते रहते बहुत दिन हो गये तब वहाँ से उनका मन उचट गया। उनका विचार हुआ कि अपने देश में चलना चाहिए। यह वात राजा भोज को भी मालूम हुई। उन्होंने बहुत मना किया कि आप यहीं रहे; यहाँ आपको किसी तरह का कष्ट न होगा। अब वहाँ न जाइए। माघ ने तो वहाँ जाना निश्चय कर लिया था अतः उन्होंने जाना ही उचित समझा। चलते समय राजा भोज ने उनको अच्छी तरह दान-दक्षिणा देकर विदा किया।

माघ कवि दान-शूर तो थे ही। वहाँ जाकर थोड़े ही दिन वाद उनके पास कुछ भी न रह गया। जो कुछ पास था सब दान कर दिया। अब माँगने वालों को क्या दिया जावे? पास कुछ भी नहीं। उन्होंने विचार किया कि राजा भोज ही अद्वितीय दानी हैं, उसी के पास जाना चाहिए। ये अपनी स्त्री को साथ लेकर धारा नगरी को चल दिये। वहाँ पहुँच कर नगरी से बाहर एक स्थान पर ठहर गये और एक पत्र लिख कर अपनी स्त्री को दे दिया। स्त्री पत्र लेकर राजदरबार में पहुँची।

राजा भोज दरबार में बैठे हुए थे। द्वारपाल ने कहा—राजन्! गुर्जर देश से पण्डित-प्रवर माघ आये हुए हैं और नगर के बाहर ठहरे हुए हैं। उन्होंने अपनी स्त्री भेजी है। वह आपके दर्शन करना चाहती है। राजा ने कहा—अच्छा आने दो। उसने आकर राजा को माघ का लिखा हुआ पत्र दे दिया। राजा उसे पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिनिहतानां हा विचित्रो विपाकः॥

अर्थात् सूर्य के उदय होने से और चन्द्रमा के अस्त से कुमुदवन की शोभा जाती रही। और, कमलो में शोभा बढ़ गई। उल्लुओं (पक्षियों) का आनन्द जाता रहा और चकवा प्रसन्न हो गये। इस तरह भाग्यहीनों का कर्मफल विचित्र है।

इस तरह उस पत्र में प्रातःकाल का वर्णन देख कर राजा भोज ने माघ पण्डित की स्त्री को तीन लाख रुपये ख़ज़ाने से दिला दिये और कहा कि हे मातः! ये रुपये मैंने तुम्हारे भोजन के वास्ते दिये हैं। मैं प्रातःकाल माघ पण्डित के दर्शन करने को आऊँगा। मैं उन्हें नमस्कार करके पूर्णमनोरथ करूँगा।

तीन लाख रुपये लेकर माघ पण्डित की स्त्री अपने पति के पास जा रही थी। रास्ते में बहुत से माँगने वाले मिल गये। उन्होंने शरद ऋतु के चन्द्रमा की उपमा देते हुए माघ की बड़ी प्रशंसा की। उनका मतलब माँगने से था। उस स्त्री ने अपने पति की प्रशंसा सुनकर वह सब रुपये माँगने वालों को मार्ग में ही दे डाले। जब वह माघ पण्डित के पास पहुँची तब उसने कहा कि हे नाथ! राजा भोज ने मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्होंने भोजन के लिए तीन लाख रुपये दिये। उन रुपयों को लेकर मैं आ रही थी कि रास्ते में मुझे बहुत से माँगने वाले मिल गये और वे सब रुपये मैंने उनको

दे दिये। माघ ने कहा—हे देवि! तुमने बहुत अच्छा किया। पर, अब यह तो बतलाओ कि ये जो सामने माँगने वाले आ रहे हैं इनको क्या देना चाहिए? इतने ही में एक मँगता माघ के पास आ गया और उनके पास एक वस्त्र मात्र बचा हुआ देख कर पढ़ने लगा :—

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्त-
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमश्रीः॥

अर्थात् हे मेघ! सूर्य की गरमी से तपे हुए पर्वत-कुल को धीरज दे कर और वनों को तेज दावाग्नि से शान्त करके तथा सैकड़ो नदी और नालों को पूर्ण करके (अब तक) जो तू ख़ाली हुआ है सो तेरी यही उत्तम शोभा है।

यह सुन कर माघ अपनी स्त्री से कहने लगा कि हे देवि! :—

अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागे रतिं वहति दुर्ललितं मनो मे।
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं परिदेवनेन।

मेरे पास धन नहीं है और मुझ को दुराशा नहीं त्यागती। मेरा दुर्ललितं मन त्याग करने में प्रसन्न होता है और दूसरे से माँगना मानो प्रतिष्ठा में बट्टा लगाना है अब मैं क्या करे! छूट सकते हैं आत्महत्या करें पर लगता

है। और विलाप करने से होता ही क्या है। अच्छा हो कि मेरे प्राण स्वयं छूट जावें। दूसरी बात यह कि—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा ।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥

दरिद्रतारूपी अग्नि से उत्पन्न हुआ ताप सन्तोषरूपी जल से शान्त हो सकता है परन्तु माँगने वालों की आशा भंग करके जो अन्तर्दाह हो रहा है वह किस से शान्त हो सकता है? मुझे संसार में ऐसी कोई चीज़ दिखलाई नहीं देती जो मेरे अन्तर्दाह को शान्त करे।

उस वक़्त माघ पण्डित की उस दुरवस्था को देख कर जितने मँगते आये थे वे सब अपने अपने घर चले गये। मँगतों के चले जाने पर माघ पण्डित कहने लगा :—

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिभिर्व्यर्थतां गतैः ।
पश्चादपि च गन्तव्यं क्व सोऽर्थः पुनरीदृशः ॥

अगर प्राण जाते हैं तो भले ही चले जावें। अब प्राणों से क्या जब कि मँगते हताश होकर लौट गये। एक न एक दिन इन प्राणों को जाना तो है ही। अब इनका काम ही क्या है? ये क्यों ठहरे हुए हैं?

इस तरह विलाप करते हुए माघ पण्डित के प्राण निकल गये। अपने पति को मरा हुआ देख कर उसकी स्त्री विलाप करने लगी कि हा! जिसके घर पर राजा लोग जाकर दास की तरह सेवा करते थे वे अब स्वर्ग को पधार गये। हा! इस समय मेरे सिवा इनके पास एक भी मनुष्य नहीं है।

जब राजा भोज को ख़बर हुई कि माघ पण्डित मर गये

हैं तब वे कई विद्वानों को साथ लेकर वहाँ गये और उन्होंने उनकी अच्छी तरह अन्त्येष्टि-क्रिया आदि कराई। इसके बाद उनकी स्त्री भी सती-धर्म ग्रहण करके परलोक को प्राप्त हुई।

माघ पण्डित के मरने से राजा भोज को बड़ा दुख हुआ। वह उनके शोक में अत्यन्त दुर्बल हो गया। बात यह कि भोज विद्वानो का बड़ा आदर करता था; सदा उन्हीं से बातचीत करके समय बिताता था।

माघ पण्डित के मरने के समय अच्छे कवि तथा कवि-शिरोमणि कालिदास भी वहाँ न थे। कालिदास कुछ नाराज होकर बाहर चले गये थे। जब मन्त्रियों ने देखा कि राजा भोज माघ पण्डित के शोक में दुर्बल हुए जाते हैं तब उन्होंने सोचा कि यदि इस वक्त कवि कालिदास यहां होते तो राजा को इतना दुख न होता। उन्होंने आपस में सलाह की कि बल्लाल देश से कालिदास को बुलाना चाहिए। उन्होंने कालिदास के लिए एक पत्र लिख कर एक मंत्री को दिया और उसे कालिदास के पास भेज दिया। वह कालिदास के पास पहुँच कर कहने लगा कि मुझको मन्त्रियों ने आपके पास भेजा है और यह पत्र दिया है। पत्र खोल कर कालिदास पढ़ने लगे। उसमें लिखा थाः—

न भवति स भवति न चिरं भवति चिरं चेत्फले विसंवादी
कोपः सत्पुरुषाणां तुल्यः स्नेहेन नीचानाम् ।

सज्जन मनुष्यों को पहले तो गुस्सा आता ही नहीं। और यदि आता है तो बहुत देर तक नहीं रहता। यदि कभी बहुत देर तक भी बना रहा तो वह अच्छा फल देने वाला होता है।

है। और विलाप करने से होता ही क्या है। अच्छा हो कि मेरे प्राण स्वयं छूट जावें। दूसरी बात यह कि—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति॥

दरिद्रतारूपी अग्नि से उत्पन्न हुआ ताप सन्तोषरूपी जल से शान्त हो सकता है परन्तु माँगने वालों की आशा भंग करके जो अन्तर्दाह हो रहा है वह किस से शान्त हो सकता है? मुझे संसार में ऐसी कोई चीज़ दिखलाई नहीं देती जो मेरे अन्तर्दाह को शान्त करे।

उस वक़् माघ पण्डित की उस दुरवस्था को देख कर जितने मँगते आये थे वे सब अपने अपने घर चले गये। मँगतों के चले जाने पर माघ पण्डित कहने लगा:—

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिभिर्व्यर्थतां गतैः।
पश्चादपि च गन्तव्यं क्व सोऽर्थः पुनरीदृशः॥

अगर प्राण जाते हैं तो भले ही चले जावें। अब प्राणों से क्या जब कि मँगते हताश होकर लौट गये। एक न एक दिन इन प्राणों को जाना तो है ही। अब इनका काम ही क्या है? ये क्यों ठहरे हुए हैं?

इस तरह विलाप करते हुए माघ पण्डित के प्राण निकल गये। अपने पति को मरा हुआ देख कर उसकी स्त्री विलाप करने लगी कि हा! जिसके घर पर राजा लोग जाकर दास की तरह सेवा करते थे वे अब स्वर्ग को पधार गये। हा! इस समय मेरे सिवा इनके पास एक भी मनुष्य नहीं है।

जब राजा भोज को ख़बर हुई कि माघ पण्डित मर गये

हैं तब वे कई विद्वानो को साथ लेकर वहाँ गये और उन्होने उनकी अच्छी तरह अन्त्येष्टि-क्रिया आदि कराई। इसके बाद उनकी स्त्री भी सती-धर्म ग्रहण करके परलोक को प्राप्त हुई।

माघ पण्डित के मरने से राजा भोज को बड़ा दुख हुआ। वह उनके शोक में अत्यन्त दुर्बल हो गया। बात यह कि भोज विद्वानो का बड़ा आदर करता था; सदा उन्हीं से बातचीत करके समय बिताता था।

माघ पण्डित के मरने के समय अच्छे कवि तथा कवि-शिरोमणि कालिदास भी वहाँ न थे। कालिदास कुछ नाराज़ होकर बाहर चले गये थे। जब मन्त्रियों ने देखा कि राजा भोज माघ पण्डित के शोक में दुर्बल हुए जाते हैं तब उन्होंने सोचा कि यदि इस वक्त कवि कालिदास यहाँ होते तो राजा को इतना दुख न होता। उन्होंने आपस में सलाह की कि वल्लभ देश से कालिदास को बुलाना चाहिए। उन्होंने कालिदास के लिए एक पत्र लिख कर एक मंत्री को दिया और उसे कालिदास के पास भेज दिया। वह कालिदास के पास पहुँच कर कहने लगा कि मुझको मन्त्रियों ने आपके पास भेजा है और यह पत्र दिया है। पत्र खोल कर कालिदास पढ़ने लगे। उसमें लिखा था:—

न भवति स भवति न चिरं भवति चिरं चेत्फले विसंवादी।
कोप. सत्पुरुषाणां तुल्यः स्नेहेन नीचानाम्॥

सज्जन मनुष्यों को पहले तो ग़ुस्सा आता ही नहीं। और यदि आता है तो बहुत देर तक नहीं रहता। यदि कभी बहुत देर तक भी बना रहा तो वह अच्छा फल देने वाला होता है।

बात यह कि अच्छे मनुष्यों का क्रोध भी नीच मनुष्यों के स्नेह के बराबर होता है ।

सहकारे चिरं स्थित्वा सलीलं बालकोकिल ।
तं हित्वाद्यान्यवृक्षेषु विचरन्न विलज्जसे ॥

हे बालकोकिल ! क्रीडा करते हुए बहुत दिन तक आम के वृक्ष पर रह कर और अब उसे त्याग कर दूसरे वृक्षों पर विचरता हुआ क्या तू लज्जित नहीं होता ! अभिप्राय यह कि राजा भोज जैसे सज्जन राजा के पास रह कर अब इधर उधर क्यों घूमते फिरते हो । वहाँ क्या लाभ है !

कलकण्ठ यथा शोभा सहकारे भवद्गिरः ।
खदिरे वा पलाशे वा किं तथा स्याद्विचारय ॥

अर्थात् हे कलकंठ कोकिल ! तेरी वाणी की शोभा जैसी आम के वृक्ष पर थी क्या वैसी शोभा खैर और ढाक के वृक्ष पर हो सकती है ? ज़रा विचार तो कर ।

उस पत्र में ये वचन पढ़ कर कालिदास के मन ने पलटा खाया । वे तत्काल, जिस राजा के पास रहते थे उससे पूछ कर धारा नगरी को चल दिये । वहाँ पहुँच कर राजा भोज से मिले । भोज ने उनकी बड़ी प्रतिष्ठा की । उनके आने से भोज का शोक जाता रहा । इसके बाद और भी बाहर गये हुए कवि वहाँ आगये । राजा भोज की फिर पहले के समान सभा होने लगी और आनन्दपूर्वक समय बीतने लगा ।

चौबीसवाँ परिच्छेद

एक ब्रह्मचारी

एक दिन राजा भोज अपने महल में बैठे हुए थे। उनके पास द्वारपाल आया और कहने लगा कि हे देव ! पर्वत देश से आया हुआ एक ब्रह्मचारी विद्वान् द्वार पर खड़ा है। वह आप से मिलना चाहता है। राजा ने कहा, अच्छा भेजो। ब्रह्मचारी ने आकर 'चिरंजीव' कह कर राजा को आशीर्वाद दिया। कुशल-प्रश्न पूछने के बाद राजा ने कहा कि हे ब्रह्मचारिन् ! आपकी उम्र बहुत कम है। और आज-कल कलि युग है। इस युग में यह आपका वेश अच्छा नहीं मालूम होता। बतलाइए तो कि आपने कौन सा व्रत धारण किया है ? मालूम होता है आप व्रत अधिक रखते हैं और निराहार रहते हैं। इसीसे आप अत्यन्त दुर्बल हो रहे हैं। यदि आप गृहस्थ धर्म में रहना पसन्द करें तो मैं आपके विवाह का प्रबन्ध कर दूँ जिससे आपको कष्ट भोगना न पड़े। कहिए, आपको स्वीकृत है ?

ब्रह्मचारी ने कहा—हे देव ! आप राजा हैं। आप जो कुछ कहें कह सकते हैं; आप जो कुछ करना चाहें कर सकते हैं;

आपको कोई बात मुश्किल नहीं । पर, हे राजन् ! मेरा जो सिद्धान्त या मन्तव्य है उसे कृपा करके सुन लीजिए:—

सारङ्गाः सुहृदो गृहं गिरिगुहा शान्तिः प्रिया गेहिनी
वृत्तिर्वन्यलताफलैर्निवसनं श्रेष्ठं तरूणां त्वचः ।
तद्ध्यानामृतपूरमग्नमनसां येषामियं निर्वृति-
स्तेषामिन्दुकलावतंसयमिनां मोक्षेऽपि नो न स्पृहा ॥

अर्थात् पशु-पक्षी मेरे मित्र हैं; पर्वत की गुफा मेरा घर-रूप है; अपने मन की प्यारी शान्ति मेरी स्त्री-रूप है; अग्नि, फल और लता आदि से मेरी जीविका है; और वृक्षों की छाल मेरे लिए उत्तम कपड़े-रूप हैं। तुम्हारे ध्यान-रूप अमृतपुर से जिनका मन भरा हुआ है अर्थात् प्रसन्न है, उनके लिए यही गृहस्थ आनन्ददायक है । किन्तु हम जैसे महादेव के उपासकों की मोक्ष में भी इच्छा नहीं है ।

ब्रह्मचारी की बातें सुन कर राजा भोज बड़े ख़ुश हुए और उसके चरण छूने के बाद कहने लगे कि हे ब्रह्मचारिन् ! अब कृपा करके यह बतलाइए कि मेरा कर्तव्य क्या है अर्थात् मुझे क्या करना चाहिए । उसने कहा कि हे राजन् ! मैं काशी जाना चाहता हूँ इसलिए तुम मेरे साथ अपने अच्छे अच्छे पण्डितों को भेज दो । मैं उनके साथ बात चीत करता हुआ वहाँ जाऊँगा । अगर आप मेरे इस काम को कर देंगे तो मुझे बड़ी ख़ुशी होगी । राजा ने स्वीकार कर लिया और ब्रह्मचारी के साथ कई अच्छे अच्छे विद्वानों को जाने की आज्ञा दे दी । कई अच्छे विद्वान् ब्रह्मचारी के साथ जाने के लिए तैयार हो गये पर कालिदास ने जाना

स्वीकृत न किया। तब कालिदास से राजा ने पूछा कि सुकवे ! तुम काशी क्यों नहीं जाते। कालिदास ने कहा— हे राजन् ! आप तो सब कुछ जानते-बूझते हैं। आपसे विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने कहाः—

हे राजन् ! जो मनुष्य देवताओं के देवता महादेव से दूर रहते हैं—जो कभी ईश्वर का भजन नहीं करते किन्तु उससे दूर रहते हैं—वे ही मनुष्य तीर्थों में जाते हैं। जो सदा उसका ध्यान रखता है, जो सदा उसका नाम लेता है वह तो ख़ुद ही तीर्थरूप है। मतलब यह कि ईश्वर का भजन करने वालों को नामधारी तीर्थों से क्या मतलब। कालिदास की बात राजा समझ गये। वे उनसे ख़ुश हो गये। फिर उन्होंने उनका और भी अधिक आदर किया।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

मृत्यु की कविता

एक दिन राजा भोज और कवि कालिदास आपस में बातचीत कर रहे थे। राजा ने बातचीत करते करते कालिदास से कहा कि हे कविराज! आप एक ऐसी कविता बनाइए जो मेरी मृत्यु की हो। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँगा।

कालिदास ने उत्तर दिया—महाराज! आप मृत्यु की कविता क्यों बनवाते हैं। ऐसी कविता मुझसे अच्छी न बन सकेगी, क्षमा कीजिए। भोज ने बार बार हठ करके कहा कि नहीं महाराज! आज बिना कविता बनवाये मैं तुमको न छोड़ूँगा।

जब राजा ने बहुत हठ किया तब कालिदास वहाँ से उठ दिये और नाराज़ होकर अपने घर को चले गये। कुछ देर बाद वे वहाँ से भी नगर के बाहर चले गये। जब राजा ने यह सुना कि कवि कालिदास नाराज़ होकर शहर से बाहर चला गया है तब उसको बड़ा दुख हुआ। राजा भोज ने कुछ दिन तो यों ही बिताये पर जब बहुत दिन हो गये और कवि

कालिदास उनके पास न आये तब अधिक वियोग राजा से न सहा गया। अन्त में राजा ने अपने राज्य का कारोबार अपने राज्य के प्रधान मनुष्यों को सौंप कर, आप योगी का वेश बना कर वहाँ चले गये जहाँ कवि कालिदास गये हुए थे।

इधर उधर ढूँढ़ते हुए कुछ दिन में कालिदास मिल गये। कालिदास ने राजा को पहचाना नहीं। आपस में बात-चीत करने लगे। बात चीत करते करते कालिदास ने पूछा कि हे योगिराज, आप कहाँ रहते हैं?

योगी ने उत्तर दिया कि—हे कविराज! यह संसार ही मेरा देश है। जहाँ रह गया, वहीं मेरा घर हो गया।

कालिदास ने फिर पूछा—आप इस समय कहाँ से आते हैं? योगी ने कहा कि मैं इस वक्त धारानगर से आ रहा हूँ। वहाँ एक झगड़ा हो गया है। कालिदास ने घबरा कर पूछा—क्या हुआ? योगी ने कहा कि राजा भोज परलोक-वासी हो गये। भोज की मृत्यु की बात सुनते ही कालिदास मूर्छित हो गये और पृथ्वी पर गिर पड़े। जब होश आया तब विलाप करने लगे कि हा! अब राजा भोज के बिना पण्डितों का आदरसत्कार—मान-प्रतिष्ठा—कौन करेगा! मैं राजा भोज के बिना अब जी कर क्या करूँगा। हा! धारा नगरी बिना मालिक के हो गई। कुछ देर चुप रह कर एक श्लोक बना कर कालिदास बोले—

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते॥

राजा भोज के परलोकवासी होने से धारानगरी निराधार —बे सहारे—हो गई। अब सरस्वती का कोई सहारा नहीं रहा। अब सब पण्डित—विद्वान्—निराश्रय हो गये।

जब कालिदास ने अपना बनाया श्लोक पढ़ कर सुनाया तब कालिदास की राजा अपने ऊपर अत्यन्त प्रीति जान कर मूर्छित हो गये।

राजा की मूर्छित अवस्था को देख कर कालिदास ने अपने मन में विचारा कि यह कौन है जो मेरे श्लोक को सुनते ही मूर्छित हो गया। जब खूब ध्यान से देखा तब कालिदास ने पहचाना कि यह तो राजा भोज ही है। फिर राजा को सावधान करके कालिदास ने कहा कि महाराज! आपने मुझे पहचान लिया है। मैंने जो श्लोक बना कर कहा था वह अशुद्ध हो गया था। अब सही बना कर कहता हूँ, सुनिए। अर्थ बदल कर सुनाया कि—

अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती।
पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते॥

राजा भोज के होने से धारा नगरी उत्तम आधार वाली हुई है। सरस्वती आश्रयवाली हुई है और सब विद्वान् उनसे शोभा पा रहे हैं।

अपने ऊपर कालिदास की अत्यन्त प्रीति जान कर भोज अत्यन्त ख़ुश हुआ और कालिदास को साथ लेकर धारा नगरी में पहुँचा।

राजा भोज बड़ा विद्वान् था। वह अपनी विद्या, बुद्धि और गुणग्राहकता के लिए सारे देश में विख्यात हो गया। उसने असंख्य विद्वानों की मनोहारिणी कविता पर मोहित होकर असंख्य धन पारितोषिक में दे डाला। उसके समय में संस्कृत विद्या की जैसी उन्नति हुई, विद्वानों को जैसा आश्रय मिला, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। राजा भोज लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का ही प्रीतिभाजन था। ये दोनों ही देवियाँ सदा उसकी सहचारिणी बनी रहती थीं। राजा भोज ने बड़ी उत्तमता से राज-काज किया और विद्वानों को असंख्य धन-दान किया। इस समय राजा भोज संसार में नहीं है, पर उसकी कीर्तिकौमुदी अभी तक सर्वत्र छा रही है। जब तक इस देश में संस्कृत-विद्या का कुछ भी प्रचार रहेगा तब तक राजा भोज की कीर्ति भी बराबर इसी तरह देदीप्यमान रहेगी।



छब्बीसवाँ परिच्छेद

कालिदास का संक्षिप्त चरित

इस किताब में कालिदास की बुद्धिमत्ता का वर्णन अधिकता से है। इस लिए हम इनका संक्षिप्त चरित लिख देना उचित समझते हैं जिससे पाठकों को मालूम हो जावे कि कालिदास किस तरह पढ़े लिखे थे। उनकी पूर्व की दशा कैसी थी? कालिदास कौन थे? इत्यादि बातों को जानने के लिए उनका कुछ हाल हम यहाँ लिखते हैं। उनका हाल इस तरह सुना जाता है—

बंगाल में एक राजा राज्य किया करता था। उसका नाम था सत्यवान्। उस राजा के चम्पकलिका नाम एक लड़की थी। राजा का जो प्रधान मन्त्री था उसके भी एक पुत्र था। उसका नाम चूड़ामणि था। राजकन्या तथा चूड़ामणि में एक साथ रहते रहते मित्रता हो गई। इन दोनों की उम्र तो बहुत कम थी ही, इसलिए छोटे लड़कों की तरह ये दोनों एक ही साथ खेलकूद किया करते थे। इन दोनों में अभी तक इतनी विचारशक्ति पैदा न हुई थी कि कौन सी बात कहनी योग्य है,

कौन सी नहीं । एक दिन रोज़मर्रा की तरह दोनों खेल रहे थे । खेलते खेलते चूड़ामणि राजकन्या से कहने लगा कि अरी चम्पककलिका ! तू मेरी स्त्री बनेगी । मैं तेरे साथ अपना विवाह करूँगा । अगर तू मेरी स्त्री बनना अच्छा समझे तो जब तेरे पिता तेरा विवाह करने का विचार करें तब उनसे कह देना कि मैं अपना विवाह चूड़ामणि से करना चाहती हूँ ।

मन्त्री के लड़के की बातें सुन कर राजकन्या को कुछ क्रोध हुआ । वह कहने लगी कि अरे ! चूड़ामणि ! तू हमारे पिता के मन्त्री का लड़का है । तू तो हमारा सेवक है । तेरा विवाह मेरे साथ कैसे हो सकता है । क्या मेरे साथ विवाह करने को कोई अच्छे घराने का राजकुमार न मिलेगा । अगर अच्छे घर का मुझको कोई राजकुमार विवाह के लिए न मिला तो मैं दूसरे किसी सामान्य मनुष्य के साथ विवाह न करूँगी, यह निश्चय समझना ।

राजकन्या की ये सब बातें सुन कर चूड़ामणि को क्रोध आया । वह कहने लगा कि हे राजपुत्री ! सुनो । जब तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह करने का विचार करेंगे तब मेरे पिता से अवश्य कहेंगे । उस समय इस काम को मैं अपने हाथ में ले लूँगा और तेरे लिए ऐसा वर ढूँढ़ कर लाऊँगा जो निपट मूर्ख हो । उस समय तू क्या करेगी । राजकन्या ने कहा कि अरे चूड़ामणि ! मुझे पति मूर्ख मिलेगा या बुद्धिमान्; यह बात तुम्हारे पिता या तुम्हारे भरोसे पर नहीं है । यह बात तो केवल भाग्य के भरोसे पर है । मेरे भाग्य में जैसा वर मिलना होगा वैसा ही मिलेगा; उसमें तू कुछ भी नहीं कर सकता ।

ये बातें करके दोनों अपने अपने घर को चले गये। मन्त्री के लड़के की कुछ उम्र अधिक थी। इसलिए उस को तो यह बात बड़ी उम्र तक याद बनी रही। राजकन्या की उम्र उस समय कुछ कम थी इसलिए थोड़े ही दिन में उसे उस बात का कुछ भी ख़याल न रहा। कुछ दिन के बाद दोनों बड़े हो गये। उनकी उम्र समझने योग्य हो गई।

राजा ने जब देखा कि चम्पककलिका अब विवाह के योग्य हो गई है तब उसने उसके विवाह का विचार किया। एक दिन राजा ने अपने प्रधान मन्त्री से कहा कि अब मेरी लड़की विवाह के योग्य हो गई है। इसलिए कोई योग्य वर ढूँढ़ना चाहिए। यह काम मैं तुम्हारे ही अधीन करना चाहता हूँ इसलिए तुम्हीं कोई अच्छा राजकुमार ढूँढ़ो।

राजा की आज्ञा स्वीकार करके प्रधान मन्त्री अपने घर पर आया। उसने अपने घर में इस बात का ज़िक्र किया कि राजकन्या के लिए कोई वर ढूँढ़ना है। यह बात उसके पुत्र को भी मालूम हुई। वह पहली बात उसको अच्छी तरह याद थी। उसने अपने पिता से कहा कि आप बूढ़े हैं। आप इधर उधर घूमने के योग्य नहीं है। योग्य वर न मिलने से शायद दूर तक जाना पड़े तो आपको अधिक तकलीफ़ होगी। दूसरी बात यह कि यदि आप वर को ढूँढ़ते ढूँढ़ते कहीं दूर निकल गये और राज-कार्य में कोई विघ्नबाधा हुई तो उसको उस समय आपके बिना कौन सँभालेगा। राज-कार्य प्रधान है। इसको छोड़ कर आपका जाना उचित

नहीं मालूम होता। इस काम को मैं अच्छी तरह कर सकता हूँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं वर ढूँढ़ कर लाऊँ।

राजा को तथा मन्त्री को चूड़ामणि की पहली बात की कुछ भी ख़बर न थी। उन दोनों में से एक भी इस बात को न जानता था कि राजपुत्री में और मन्त्रिपुत्र में बचपन में कोई ऐसी बात हो गई है जिसके कारण मन्त्री का लड़का ऐसी कार्रवाई करना चाहता है। मन्त्री ने अपने लड़के की बातें सुन कर कहा कि अच्छी बात है यदि तुम योग्य वर ढूँढ़ लाओ। मैं राजा से पूछ लूँ। बिना राजा की आज्ञा के मैं तुमको नहीं भेज सकता। पुत्र से इस तरह कह कर प्रधान मन्त्री राजा के पास आज्ञा लेने के लिए चला गया। राजा ने प्रधान मन्त्री से कहा कि अगर तुम्हारा लड़का इस काम को अच्छी तरह कर सकता है तो अच्छी बात है, उसी को भेज दो। आपका लड़का तथा मेरी लड़की दोनों बचपन में भाई-बहन की तरह एक साथ खेला करते थे। उन दोनों में अच्छा मेल था। आपका लड़का यह अच्छी तरह जानता ही है कि राजकन्या के लिए वर कैसा होना चाहिए। वह अच्छा ही वर ढूँढ़ कर लावेगा। इसलिए उसी को जाने दो।

राजा की आज्ञानुसार मन्त्री ने अपने लड़के को भेजने के लिए मार्ग का सामान तैयार कराया। सब सामान देकर कुछ नौकर साथ जाने के लिए भेजे। मन्त्री का लड़का वर ढूँढ़ने के लिए चल दिया। राजकन्या को भी यह मालूम हो

गया कि चूड़ामणि वर ढूँढ़ने को जा रहा है। उसे बचपन की बात बिलकुल याद न थी।

चूड़ामणि अपने घर से निकल कर अनेक देश-देशान्तर में घूमता फिरा, पर जैसा वर उसको चाहिए था वैसा वर कहीं भी न मिला। एक दिन वह घूमता घूमता जा रहा था कि रास्ते में एक वन मिला। उस वन में देखा कि एक लड़का एक वृक्ष पर चढ़ा हुआ है। वह उस वृक्ष की एक डाली काट रहा है। वह जिस डाली पर बैठा था उसी को काट रहा था। चूड़ामणि ने देख कर कहा कि अरे लड़के ! तू यह क्या कर रहा है। जिस डाली पर तू बैठा है उसी को काट रहा है ! इस डाली के कटते ही तू भी ज़मीन पर आ गिरेगा।

उस लड़के ने कहा कि आप ठीक कहते हैं। पर मैं क्या करूँ। मैं इस वृक्ष पर चढ़ तो गया पर अब उतरना मुझे नहीं आता। इसलिए इस डाली को काट रहा हूँ कि कट कर वह डाली नीचे गिर पड़े तो मैं भी इसके साथ ज़मीन तक आ जाऊँगा।

उस लड़के की बातें सुन कर चूड़ामणि ने अपने मन में निश्चय किया कि यह बिलकुल मूर्ख है। जैसा वर मैं ढूँढने को निकला हूँ वैसा ही है। यह देखने में ख़ूबसूरत और बोलने में भी चतुर मालूम होता है, पर है बड़ा मूर्ख। मैंने हज़ारों मूर्ख देख डाले पर ऐसा मूर्ख एक भी न मिला था। राजकन्या के लिए यह अच्छा वर है।

अब चूड़ामणि ने अपने एक नौकर से कहा कि इस मनुष्य को वृक्ष से नीचे उतार लो। उसने उसको नीचे उतार

लिया। उस मूर्ख लड़के से नौकर ने पूछा कि तू कौन है? किस वर्ण का लड़का है? तू क्या किया करता है? तेरी जीविका किस तरह होती है? उस लड़के ने धीरे से उत्तर दिया कि मैं एक ब्राह्मण का पुत्र हूँ। मैं लिखा पढ़ा कुछ भी नहीं हूँ। जब मैं छोटा था तभी मेरे माता-पिता मुझको छोड़ कर कहीं चले गये थे। अब मैं गाँव की गाय-भैंसें चरा कर अपना गुजारा किया करता हूँ।

चूड़ामणि ने कहा कि यदि तू हमारे राजा की कन्या से अपना विवाह करना चाहे तो हमारे साथ चल। हम तेरी शादी करा देंगे। वह बेचारा मूर्ख तो था ही। उसने इस बात का बिलकुल विचार न किया कि कहाँ तो राज-कन्या और कहाँ मैं! मेरी क्या योग्यता है कि मेरा विवाह राजकन्या से हो सके। उसने कह दिया कि बहुत अच्छा। मैं राज-कन्या से अपना व्याह करने के लिए राज़ी हूँ।

अब चूड़ामणि ने उस अज्ञान बालक को नदी में स्नान कराया। अपने पास से अच्छे अच्छे कपड़े देकर उसको पहनाये। चूड़ामणि ने कुछ आभूषण भी पहना दिये। मतलब यह कि उसको ऐसे सामान से सजा दिया जिससे मालूम हो कि यह एक उच्च घराने का लड़का है। जब उसका ठाटबाट ठीक हो गया तब चूड़ामणि अपनी सवारी में बैठा कर चल दिया। वे सब बड़ी धूमधाम से उसको लेकर अपने नगर में पहुँचे। चूड़ामणि ने उस वर को एक मन्दिर में उतार दिया और उसके पास ऐसे विश्वासपात्र मनुष्य पहरे के लिए रख दिये जिससे उसका भाँडा न फूट सके। उस मूर्ख लड़के को

चूड़ामणि ने अच्छी तरह समझा दिया था कि देखो जब तुमको कोई देखने आये तब बहुत न बोलना और देखनेवालों के सामने ख़ूब शान से रहना। उस मन्दिर में उसका अच्छा प्रबंध करके चूड़ामणि वहाँ से चल दिया।

अब नगर में इस बात की ख़बर फैल गई कि राज-कन्या के लिए मगधदेश का एक वर आ गया है। चूड़ामणि ने भी राजा से जाकर कहा कि महाराज! मैं वर की खोज में देशदेशान्तर में गया। बड़ी खोज के बाद मगध देश में एक वर आपकी कन्या के योग्य मिला है। अब मैं उसको अपने साथ ले आया हूँ।

नगरवासी बहुत से मनुष्य उसको देखने के लिए आये। उसके रूपलावण्य को देख कर सबने अपने मन में निश्चय किया कि वर तो ठीक है।

अब राज्य की ओर से विवाह का सामान होने लगा। थोड़े ही दिनों में विवाह का सब सामान ठीक हो गया। नगर भर में आनन्द ही आनन्द होने लगा कि राजकन्या का विवाह है। राजा ने सब नगरवासियों को दावत दी और विवाह के सामान हुए तथा विधिपूर्वक विवाह किया गया।

एक दिन राजकन्या ने अपनी एक दासी को उस अज्ञान लड़के को देखने के लिए भेजा। दासी ने जाकर देखा कि महाराज सोने की बढ़िया खाट पर सो रहे हैं, वह लौट आई। फिर चम्पककलिका अपनी एक दासी के साथ उस मकान में गई जहाँ उसका पति ठहरा हुआ था। उसने जाकर देखा कि वह अब तक खाट पर सो रहे हैं। उसने उसको सोता

देख कर कई ऐसे इशारे किये जिससे वह जाग जावे। लेकिन वह न जगा। राजकन्या कई उपाय कर चुकी पर उसका पति अभी तक नहीं जागा, अब उसने समझ लिया कि वह निद्रा में अचेत हो रहा है। फिर एक बार हाथ पकड़ कर हिलाया पर फिर भी वह वैसे ही ज़ोर से ख़र्राटे लेता हुआ आनन्द से सोता रहा। राजकुमारी ने अपने मन में समझ लिया कि इसको कभी ऐसा सुखपूर्वक सोना नहीं मिला। जो सोने के लिए चीज़ें इसको यहाँ मिली हैं ऐसी पहले कभी न मिली होंगी इसी लिए यह अचेत होकर सो रहा है। मालूम पड़ता है कि यह बड़े घर का नहीं है किन्तु किसी ग़रीब का लड़का है। यह सब विचार करते करते चम्पककलिका को वह बात याद आगई जो बचपन में चूड़ामणि ने कही थी कि 'तेरे लिए ऐसा वर ढूँढा जावेगा जो निपट मूर्ख एवं ग़रीब होगा'। इस तरह वह बहुत देर तक सोचती रही और मन में बड़ी दुखी हुई कि यह क्या हुआ। जब वह किसी तरह उठा ही नहीं, देर भी बहुत हो चुकी थी तब उसने उसका एक हाथ पकड़ कर उठाया और उसको बैठा दिया। वह ज्यों ही जागा त्यों ही उसने देखा कि सामने एक ऐसी राजकुमारी खड़ी है जो रूपलावण्य में अद्वितीय है। उसके मुँह पर ऐसी शोभा, ऐसी कान्ति थी कि वैसे रूपवाली कोई स्त्री उसने कभी देखी ही न थी। वह देखते ही डर गया और खाट पर से उतर कर नीचे खड़ा हो गया। वह हाथ जोड़ कर कहने लगा कि हे राजकुमारी! मुझे यह मालूम न था कि यह खाट आपकी है। आपकी खाट मैं जानता तो कभी न सोता। क्षमा कीजिए।

आपके ही नौकरों ने मुझको इस पर सुला दिया था। इससे मैं इस पर सो गया। अब क्या होता है। अपराध क्षमा हो।

अब राजकुमारी ने उसकी परीक्षा लेने के लिए नाना प्रकार की उसको चीजें दिखलाईं पर उसने किसी चीज़ की तरफ़ नज़र न की। किसी भी चीज़ के लिए यह न कहा कि यह अच्छी बनी है या बुरी। वह बेचारा क्या जानता था कि राजकुमारी की दिखलाई हुई चीज़ें बेशक़ीमती हैं। उसने कभी ऐसी चीज़ें देखी ही न थीं। वह तो जन्म भर गाय-भैंसे ही चराता रहा था। एक दिन अकस्मात् उसको राजकुमारी के साथ वन में जाने का मौक़ा हुआ। वह वहाँ की चरती हुई गाय-भैंसों को देख कर बड़ा ख़ुश हुआ और कहने लगा कि देखो इन जानवरों के लिए यह कैसा अच्छा जंगल है, इन के चरने के लिए कैसा आराम है। उस मूर्ख की बातें सुन कर राजकुमारी को विश्वास हो गया कि यह राजकुमार नहीं किन्तु ग्वालिया मालूम होता है।

जब राजकुमारी को यह निश्चय होगया कि यह कोई ग्वालिया है, यह बड़ा मूर्ख है, इसके साथ रह कर जन्म भर दुख भोगना पड़ेगा। इसको किसी उपाय से घर से निकाल दिया जाय तो कदाचित् यह कुछ पढ़-लिख जाय। यह सोच विचार कर एक दिन राजकुमारी ने साफ़ साफ़ कह दिया कि तुम मेरे योग्य नहीं। तुम्हारे साथ मेरी जिन्दगी नहीं कट सकती। इसलिए तुमको मैं मरवा दूँगी। वह डरते हुए कहने लगा कि मैंने आपका कोई नुक़सान नहीं किया। आप मुझको मारने का क्यों विचार करती हैं। राजकुमारी ने कहा कि तू

अत्यन्त मूर्ख है. तेरे साथ रहने की अपेक्षा यदि मैं विधवा होकर रहूँगी तो अच्छा है। मूर्ख मित्र के साथ रहना अच्छा नहीं. इससे तो यही अच्छा है कि मनुष्य विना मित्र के रहे। इसी लिए मैं तुझे मारना चाहती हूँ।

मूर्ख ने पूछा कि मैं मूर्ख क्यों हुआ सो तो बताइए।

राजकन्या ने उत्तर दिया कि तुमने पूर्व जन्म में अच्छे काम नहीं किये थे इसी से तुम मूर्ख रह गये।

उस मूर्ख ने कहा कि अब मैं क्या करूँ? मुझको कौन सा उपाय करना चाहिए जिससे मैं पढ़-लिख सकूँ।

राजकन्या ने कहा—आज कल इस शहर के बाहर एक कालीचन्द्र नामक ऋषि आये हुए हैं उनके पास जाकर पूछो। वे तुमको उपाय बतला देंगे।

राजकन्या जब ऊपर का हाल कह चुकी तब फिर उसके मन में जलन पैदा हुई कि इस मूर्ख को मार देना ही अच्छा है। वह तलवार निकाल कर उसको मारने के लिए तैयार हुई। उस मूर्ख ने हाथ जोड़ कर कहा, मुझे मारो मत। आज से मैं इस नगर में कभी न आऊँगा। आज ही मैं इस नगर को छोड़ कर बाहर चला जाऊँगा।

राजकन्या ने मन में विचार किया कि यह नगर छोड़ ही देगा और बड़ा पाप तो मनुष्य-हिंसा ही में है। और यह तो मेरा पति हो चुका है। इसके मारने में महा पाप होगा। यह विचार कर उसने उसको छोड़ दिया। मारा नहीं।

मूर्ख ब्राह्मण मृत्यु से छुटकारा पाते ही वहाँ से चल दिया। वह ढूँढ़ता ढूँढ़ता उसी कालीचन्द्र ऋषि के पास

पहुँचा । उसने अपने मन में सोचा कि मुझे धिक्कार है कि मैं ब्राह्मण होकर मूर्ख बना रहा । मूर्ख होने से ही राज-कन्या ने मुझे अपने घर से निकाल दिया । यदि मैं कुछ भी पढ़ा-लिखा होता तो वह मुझको क्यों निकालती । यह सोच कर वह मुनि के पास जाकर खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि हे महाराज! मैं बड़ा मूर्ख हूँ । मैं कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं हूँ । मेरा विवाह एक राज-कन्या से हुआ था । वह बहुत पढ़ी-लिखी है । उसने मुझ को मूर्ख समझ कर मारना चाहा था । वह मुझको अपने साथ किसी तरह भी रखने को राज़ी नहीं हुई । जैसे तैसे मैं वहाँ से भाग आया हूँ । अब आप के शरण में हूँ । आप किसी प्रकार मुझे पढ़ने का उपाय बतलाइए कि मैं क्या करूँ । मूर्ख रहना अच्छा नहीं ।

उन्होंने देख कर उस मूर्ख से कहा कि अरे! तू घब-राता क्यों है । मैं तुझको बहुत जल्दी पढ़ा-लिखा कर विद्वान् बना दूँगा । तू धीरज धर, तू बड़ा विद्वान् बन जावेगा । वह वहाँ ऋषिराज के पास रहने लगा और विद्या के गूढ़ मर्म को सीखने लगा ।

जब राजघराने से वह मूर्ख ब्राह्मण चला गया तब राजकन्या के चित्त में कुछ सन्तोष हुआ ।

थोड़े दिन के बाद वह ब्राह्मणपुत्र पढ़ लिख कर ऐसा विद्वान् हुआ जिसकी कीर्ति आज देश-देशान्तर में छाई हुई है । जब वह पूर्ण विद्वान् हो गया तब अपने घर पर आया और दर्वाज़े पर आकर कहने लगा कि "कपाटामुद्घाटय"

किवाड़ खोलो । ब्राह्मण की स्त्री उस समय किसी कार्य में संलग्न थी । आवाज सुनते ही समझ गई कि मेरा पति आया है: यह आवाज़ मेरे पति की ही है । उसने भीतर से ही कहा कि "अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः" क्या तुम्हारी बातचीत में कुछ परिवर्तन होगया है; क्या तुम कोई विद्या सीख कर आये हो ?

जब स्त्री-पुरुष दोनों की परस्पर बातचीत हुई तब चम्पककलिका को मालूम हो गया कि मेरा पति तो अद्वितीय विद्वान् होकर आया है । वह हाथ जोड़ कर सामने खड़ी हुई और अपने अपराध की क्षमा चाहने लगी । उसने कहा—महाराज ! मेरे अपराध को क्षमा कीजिए । मैंने आपके साथ वह पाप किया है जो कोई भी स्त्री अपने पति के साथ नहीं कर सकती । अब मेरा इसी में निस्तार है कि आप मेरे अपराध को क्षमा कर दें । ब्राह्मण ने कहा—इसमें तेरा कोई अपराध नहीं; तूने मेरे मनुष्य जन्म को सार्थ कर दिया । यदि मेरे साथ तेरा कठोर वर्त्ताव न होता तो मैं जन्म भर मूर्ख ही बना रहता । तेरी ही कृपा से मैंने विद्या सीखी है । इसके लिए मैं तेरा आजन्म उपकार मानूँगा ।

अन्त में वे दोनों स्त्री-पुरुष आनन्द के साथ अपने गृहस्थाश्रम को व्यतीत करने लगे । जब तक संसार में रहे—आनन्दपूर्वक अपने जीवन को बिताया ।

विद्या पढ़ कर जब वह ब्राह्मण आया तब किवाड़ खोलने के लिए अपनी स्त्री से कहा था कि किवाड़ खोलो ।

उस समय जो वाक्य उसकी स्त्री ने कहा था उसका एक एक शब्द लेकर उस ब्राह्मण ने तीन ऐसे काव्य बनाये हैं जिनका प्रचार देश-विदेश में आज तक ने रहा है। और जब तक पठन पाठन का प्रचार बना रहेगा तब तक कालिदास की पुस्तकों की इज़्ज़त बनी रहेगी। 'अस्ति' शब्द को लेकर "कुमारसम्भव" काव्य बनाया, जिसके पहले श्लोक में कविराज ने 'अस्ति' शब्द रक्खा है। 'कश्चित' शब्द लेकर 'मेघदूत' बनाया जिसके प्रारम्भ के श्लोक में 'कश्चित्' शब्द रक्खा है। 'वाक्' शब्द लेकर कविराज ने महाकाव्य 'रघुवंश' रचा। रघुवंश का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो गया है। आज कल कालिदास के काव्य-ग्रन्थों की बड़ी प्रशंसा है। वास्तव में कालिदास कविशिरोमणि थे। उन्होंने अपना नाम विद्या पढ़ लिख कर ही कालिदास रक्खा था।

जब राजा भोज को इनकी विद्वत्ता का हाल मालूम हुआ तब उसने इनको अपनी सभा में बुलाया और इनसे बात चीत करके वह इतना प्रसन्न हुआ कि इनको बड़े आदर के साथ अपनी सभा का सर्वोपरि पण्डित मान कर रक्खा और दानमान से इनकी बड़ी प्रतिष्ठा की। राजा भोज कवि कालिदास के बराबर किसी कवि को न मानते थे। ये सदा इनको अपने साथ रखते और इनसे बातचीत करके बड़े प्रसन्न होते थे। कवि कालिदास के बराबर कवि होना मुश्किल है। इस समय तक इनके समान कोई कवि नहीं हुआ।

इति।